आहुति

[ऐतिहासिक नाटक]

हरिकृष्ण 'प्रेमी'



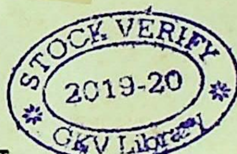
आहुति

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक
श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'



प्रकाशक
हिंदी भवन
अनारकली, लाहौर



जून १६४०]

मूल्य ।।=)

Printed and published by D. C. Narang,
at the H. B. Press, Lahore.

समर्पण

भाई जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद',

तुमने मुझ में अपने प्राण डाले हैं। मेरे हृदय के अवरुद्ध स्रोत के आगे से संकोच की शिला हटाई है। तुमने अपने जीवन की जलन देकर मेरी साधना का दीप जलाया है।

तुम्हारा ऋण, भैया, अनेक जन्म लेकर भी मैं नहीं उतार सकता। तुम तुम नहीं रहे, मैं मैं नहीं रहा। फिर किसका लेना, किसका देना। संसार के अंधकार ने आज तुम्हें मुझ से ओझल-सा कर दिया है, लेकिन अपने दिल के दर्द में, आँखों के आँसुओं में और प्राणों की वेदना में मैं नित्य ही तुम्हें पाता हूँ।

अपनी सूखी हुई फुलवारी का एक सूखा सा फूल तुम्हें दे रहा हूँ।

तुम्हारा अपना;
हरिकृष्ण 'प्रेमी'

आलोक

'आहुति' ऐतिहासिक नाटक है। रणथंभौरगढ़ के महाराव हम्मीरसिंह चौहान उस काल के सम्राट् अलाउद्दीन ख़िलजी के कोप-पात्र एक मुसलमान सरदार को शरण देकर स्वयं भी उसके कोप-पात्र बनते हैं और अपनी और अपने सर्वस्व की 'आहुति' दे देते हैं। राजस्थान के एक छोटे से भाग का शासक—हम्मीर भारतीय वीर-रत्नों में अप्रतिम है। इतिहास इसका साक्षी है, और हिंदी के तीन प्राचीन कवियों, चंद्रशेखर, ग्वाल और जोधराज, ने उसका यश गाने के लिए एक-एक काव्य लिखकर अपनी लेखनी को पवित्र किया है। मैं इन काव्यों से और इतिहास से सिवाय नामों के और कुछ नहीं ले सका हूँ। नाटक की कथा-वस्तु, घटना-क्रम और भावनाएँ मेरी कल्पना और अनुभूति के ताने-बाने से बनी हैं।

अपने नाटकों में 'रक्षा-बंधन', 'स्वप्न-भंग' और यह 'आहुति' घटना-चक्र की समानता के कारण एक ही प्रकार के जान पड़ते हैं। मैंने नाटकों में जो सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया है, वह इनमें अनायास ही आ गया है। इनके अतिरिक्त रंग-मंच पर खेलने की दृष्टि से भी ये नाटक अधिक सुविधाजनक हैं, इसमें

संदेह नहीं। मेरे 'शिवा-साधना' और 'प्रतिशोध' नाटक भी राष्ट्रीय भावनाओं के प्रेरक हैं।

मेरी नाटक क्षेत्र में यह सातवीं भेट है और आठवीं 'मंदिर' के नाम से (मेरे एकांकी नाटकों का संग्रह) सस्ता-साहित्य-मंडल द्वारा आवेगी। मुझे अपने जीवन-काल में बहुत-कुछ करना है। अनेक आकस्मिक बाधाओं के कारण मैं 'आँखों में', 'जादूगरनी' और 'अनंत के पथ पर' के बाद लिखी अपनी चार-पाँच काव्य-पुस्तकों को हिंदी-जगत के सामने उपस्थित नहीं कर पाया हूँ। अभी तक मैं अपनी स्वाभाविक स्थिति में नहीं आया हूँ, फिर भी मैं विपत्तियों को कलम की स्याही बनाकर भारती के मंदिर में साधना किये जा रहा हूँ। केवल काव्य और नाटक ही नहीं मेरे हृदय में उपन्यास और कहानियाँ भी बेचैन हैं। आज वर्षों से मैं अपने पाठकों, प्रेमियों और मित्रों से निवेदन करता आ रहा हूँ कि यह जीवन-दीपक खाली हो रहा है। इसे उस पदार्थ की आवश्यकता है जो इसकी ज्योति को जीवित रखे। जिस काम के लिए मैं पैदा नहीं हुआ वह मुझे करना पड़ता है और जिस काम के लिए मैं पैदा हुआ हूँ वह मेरी राह देखते-देखते निराश हुआ जा रहा है।

मैं अपने जीवन-क्षणों को चुराकर 'भारती' के मंदिर में आ पाता हूँ। जीवन-संघर्ष से अस्त-व्यस्त वस्त्र, त्रस्त शरीर और उलझे केशों वाले दीवाने को देखकर मंदिर में जमा हुए कलाकार चकित होते हैं, मुझे व्यंग की वस्तु बनाते हैं। लेकिन, मैं क्या करूँ, संसार-पथ पर भटक कर चाहे कितनी ही दूर मैं जा पहुँचूँ, फिर भी

मुझे लौटकर 'भारती' के मंदिर में आना ही पड़ता है। मैं नहीं चाहता कि इस आने-जाने में मेरा समय नष्ट हो। मैं 'साहित्य' से एकरूप हो जाना चाहता हूँ।

'आहुति' की बात कहते-कहते कहाँ आ गया। साहित्य-सेवा करना जीवनाहुति देना ही है। आँसुओं और रक्त से लिख-लिख कर मैं पुस्तकें दिए जाता हूँ। उनकी अच्छाई-बुराई मैं नहीं देख पाता। मेरे पाठकों ने मुझे सदा उत्साहित किया है। इस नाटक से मुझे तृप्ति हुई है। आशा है पाठक भी प्रसन्न होंगे, और मुझे आशीर्वाद देंगे।

इस नाटक में एक दृश्य भैया-दूज का आया है। मेरे प्रदेश में साल में दो बार भैया-दूज आती है, एक बार दीवाली के बाद और दूसरी बार होली के बाद। रक्षा-बंधन की भाँति ही भैया-दूज का त्योहार अत्यंत मधुर और स्नेह-सिक्त है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पात्र-परिचय

पुरुष

हम्मीरसिंह	रणथंभौर के महाराव
रणधीरसिंह	हम्मीरसिंह के चाचा
जय, विजय और अक्षय	हम्मीर के पुत्र
सुरजनसिंह	रणथंभौर का कोषाध्यक्ष
अलाउद्दीन	दिल्ली-सम्राट
महरमखाँ	अलाउद्दीन का एक वज़ीर
जमालखाँ, मीरगभरू	दिल्ली के सेनापति
मीर महिमा	मीरगभरू का भाई, हम्मीरसिंह का मित्र।

स्त्री

महारानी देवल	रणथंभौर की महारानी,
चन्द्रकला	रणथंभौर की राजकुमारी
चपला	नालहारणोगढ़ के किलेदार की पुत्री।

आदि।

आहुति

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—नलहारणोगढ़ की एक बावड़ी के निकट की पगडंडी। ग्राम की कुछ युवतियाँ बगल में रीते घड़े दबाए आ रही हैं। कुछ सर पर भरे हुए घड़े रखे जा रही हैं। युवतियों की पोशाक राजस्थानी है। रंगीन घाघरा, रंगीन चूनरी। हाथ, पैर, गले, कान और सर के आभूषण उनकी आर्थिक स्थिति का भेद बता रहे हैं। चपला का कुछ युवतियों के साथ गाते हुए प्रवेश। सभी युवतियाँ घड़े लिए हुए हैं।

(गान)

सखि, घट में भर पानी।

दिन जाता है बीता,
रह न जाय घट रीता,
कौन समय से जीता,
वह करता मनमानी।
सखि, घट में भर पानी।

देख उधर, क्या आई!
नभ में बदली छाई,
लहर लहर लहराई
तेरी साड़ी धानी।
सखि, घट में भर पानी।

रुन-झुन-रुन-झुन हौले
पग के बिछुआ बोले।
सखि, चल घूँघट खोले।
प्यास बुझा लें प्राणी!
सखी, घट में भर पानी!

चपला—क्यों हवा हुई जाती हो? थोड़ा रुको भी।

(सभी युवतियाँ अपने घड़े रख कर बैठती हैं)

एक युवती—क्यों चपला, राजस्थानियों के प्रति भगवान का करुणा-हस्त इतना कृपण क्यों हो गया है? यहाँ के आकाश में या तो मेघ-माला के दर्शन ही नहीं होते, या होते भी हैं तो वे प्राणों में प्यास जाग्रत करके अंतर्धान हो जाते हैं। भूले-भटके द्रवित भी हुए तो जलते हुए बालु-कणों को दो-चार बूँदें पिलाकर चलते बने।

चपला—राजपूतों की तलवार में पानी है। यहाँ तो पानी की नहीं, खून की वर्षा होती है।

दूसरी युवती—यहाँ की भूमि अगस्तमुनि की प्यास लेकर आई है। चाहे कितनी भी वर्षा हो जावे, घड़ी भर पीछे वही शुष्कता!

चपला—हाँ, बहन, इस भूमि को केवल पानी की ही नहीं,

रक्त की भी ऐसी ही भयानक प्यास है। अलाउद्दीन यहाँ रक्त की वर्षा होती है, फिर भी इसकी जीभ लपलपाती रहती है।

(नेपथ्य में घोड़ों की टापें सुनाई देती हैं)

पहली युवती—उधर देखो, कितनी धूल उड़ रही है, चपला।

चपला—शायद महाराव हम्मीरसिंह जी आए हों।

दूसरी युवती—शिकार खेलने ?

पहली युवती—क्या यहाँ जंगली जानवर अधिक रहते हैं ?

चपला—सिंहों को जंगली ही कहा जाता है। वह सभ्यता किस काम की, जो मनुष्य को पालतू कुत्ता बना देती है। हम राजपूत जंगली रहे हैं और जंगली रहेंगे। हम, मरना या मारना, दो ही रास्ते जानते हैं। बीच का रास्ता नहीं। चलो, अब चलें, देर होती है।

(सबका वही गीत गाते हुए एक ओर से प्रस्थान, दूसरी ओर से अलाउद्दीन और मीर महिमाशाह का प्रवेश)

अलाउद्दीन—देखते हो, महिमाशाह, उस बावड़ी पर रूप का बाज़ार लगा है।

मीर महिमा—जी जहाँपनाह ! आँखें हैं, इसलिए देख पाता हूँ और इन पाकदामन बहनों के कदमों पर मन ही मन सर झुकाता हूँ। बादशाह सलामत, यह बाज़ार नहीं, बगीचा है।

अलाउद्दीन—रूप का बगीचा !

मीर महिमा—जी हाँ, मुझे तो राजपूतों की ज़िंदगी बेहद प्यारी है। खुदा ने यहाँ या तो बालू के मैदान बिछाए हैं, या चट्टानी पहाड़ियाँ खड़ी की हैं। इस वीराने में राजपूत औरतें ही

तो फूलों की तरह रौनक बढ़ाती हैं। देख कर आँखें ठंडी हो जाती हैं।

अलाउद्दीन—और दिल जल उठता है। उस धानी साड़ी वाली लड़की को देखते हो, महिमा! मेरा हरम मुझे वीरान जान पड़ता है। बोलो, तुम मेरा काम करोगे। इस लड़की को यहाँ से……

मीर महिमा—मीर महिमा ऐसी बात सुनना गुनाह समझता है, जहाँ-पनाह! दिल्ली के बादशाह ने चित्तौड़ के महाराणा या रणथंभौर के महाराव का सर माँगा होता तो मैं अपना हौसला आज़माता। एक बहादुर सिपाही किसी औरत की अस्मत[१] और शान के ख़िलाफ़ कोई क़दम नहीं उठा सकता।

अलाउद्दीन—महिमा, तुम मेरे नौकर हो। तुमने मेरा नमक खाया है।

मीर महिमा—आपकी ख़िदमत में बंदे का सर हाज़िर है। (अपनी तलवार बढ़ाता है) यह लीजिए मेरी तलवार। उस दिन, जब मैंने पैदल ही शेर का शिकार किया था, हुज़ूर ने अता[२] फ़रमाई थी। इससे मेरा सर कलम कर दीजिए।

अलाउद्दीन—तो मैं दूसरे आदमी को भेजूँ?

मीर महिमा—गुस्ताख़ी माफ़ हो, दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी साहब यहाँ से तब तक एक क़दम भी नहीं हिल सकते, जब तक ये बहनें क़िले में दाख़िल नहीं हो जातीं।

---

१. सतीत्व। २ प्रदान।

अलाउद्दीन—मैं .खुद जाऊँ तो......

मीर महिमा—तो जहाँपनाह के पैरों को थोड़ा-थोड़ा छोटा कर देना पड़ेगा।

अलाउद्दीन—नामाक़ूल, गुस्ताख़, नमकहराम महिमा! तुम मेरी तौहीन करते हो! जिस हाँडी में खाना उसी में छेद करना! अलाउद्दीन के गुस्से का नतीजा देवगिरि के खँडहर बता रहे हैं।

मीर महिमा—मैं जानता हूँ इस गुस्ताख़ी का नतीजा है मेरी मौत! लेकिन जहाँपनाह, इस गुलाम ने ज़िंदगी की परवा ही किस दिन की है? आप चाहें तो मेरा सर इसी वक्त ले सकते हैं। मैं उसी वक्त तक ज़िंदा रहने की कोशिश करूँगा, जब तक ये राजपूत बहनें क़िले में दाख़िल नहीं हो जातीं।

अलाउद्दीन—मैं तुम्हें मारूँगा नहीं। तुम्हारी ज़िंदगी को खँडहर बना दूँगा, महिमाशाह! मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ कि तुम मेरी हुकूमत की हद के बाहर चले जाओ।

मीर महिमा—मुझ पर इतना रहम क्यों? मैंने तो आज तक यही देखा है कि जिस पर बादशाह अलाउद्दीन की त्योरी चढ़ी वह या तो जल्लाद की तलवार के नीचे आया या शेर के जबड़ों के बीच। आज आपके दिल में रहम का दरया क्यों उमड़ पड़ा?

अलाउद्दीन—मैं देखना चाहता हूँ कि दिल्ली के बादशाह की तौहीन करने वाले को पनाह देने का हौसला किसमें है।

मीर महिमा—मेरी तलवार मेरे लिए जगह बना लेगी। आख़िरी बार अपने मालिक की कदम-बोसी कर लूँ।

(अलाउद्दीन के पैरों पर झुकता है)

अलाउद्दीन—महिमा, ढोंग न करो। मैं तुम्हें अब भी मौका दे सकता हूँ। तुम ग़लती..........

मीर महिमा—मैं मौका नहीं चाहता। बहनें क़िले में दाख़िल हो चुकी हैं। मेरा फ़र्ज़ पूरा हो चुका। हरेक मर्द का फ़र्ज़ है कि वह औरत की हिफ़ाज़त करे। औरत, चाहे वह किसी कौम की हो, इबादत[1] की मुस्तहक़[2] है। आप यही सीख सकें तो दुनिया में अपना नाम रोशन कर जावें। आप में क्या नहीं है? आप में वह ताक़त है जिसके आगे हिंदुस्तान का हरेक राजा काँपता है। आप की आँख की त्योरी से ऊँचे-ऊँचे क़िले झुक जाते हैं। जहाँपनाह, आप इंसान बनें। मैं जाता हूँ। मेरे भाई का ख़याल रखिएगा।

(मीर महिमा का प्रस्थान)

अलाउद्दीन—बहादुर मीर महिमा! तुम्हें ज़िंदा छोड़ कर मैंने तुम पर रहम नहीं किया है। राजपूती घमंड में कोई न कोई राजा तुम्हें पनाह देगा और मुझे उसका मुल्क अपनी हुकूमत में शामिल करने का मौक़ा मिलेगा। एक तीर में दो निशाने मारे हैं। दिल्ली के अमीर उमरावों में महिमा की इज्ज़त और रोब बहुत बढ़ गया था। न जाने किस दिन ये मिल कर मेरे ही ख़िलाफ़ उठ खड़े होते। चलो, एक काँटा तो साफ़ हुआ।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

---

१. पूजा। २. अधिकारिणी।

दूसरा दृश्य

[स्थान—जंगल। समय—रात्रि। चाँदनी रात है। सब ओर निस्तब्धता है, केवल कहीं पास ही में बहने वाली सरिता का कल-कल शब्द सुनाई दे जाता है। महाराव हम्मीरसिंह और राव रणधीरसिंह का हाथ में नंगी तलवार लिए प्रवेश।]

हम्मीर—चाचाजी, मेरे प्राणों में असंतोष का, अशांति का और उद्दाम आकांक्षा का भयंकर बवंडर उठता रहता है। वे भी दिन थे जब हमारे पूर्वज पृथ्वीराज चौहान की विजय-दुंदुभी से दिशाएँ गूँजती थीं। विदेशी आक्रमणकारियों के जन-समुद्र की लहरें पृथ्वीराज-रूपी चट्टान से टकरा कर लौट जाती थीं। उस वीरतापूर्ण गौरवमय अतीत की याद से हृदय पुलकित हो उठता है। मेरा जी करता है हमारे पूर्वजों के रक्त से सिंची हुई हमारी जन्मभूमि पर अधिकार कर चैन की वंशी बजाने वाले विदेशियों से लोहा लूँ। मेरे प्राणों में जोश का तूफ़ान लहराता रहता है, वही मुझे इन जंगली घाटियों में लिये फिरता है। क्या सिंहों के शिकार से मेरी तलवार तृप्त हो सकेगी?

रणधीर—मैं जानता हूँ, हम्मीर! तुम एक दिन दिशाओं को लाल करोगे।

हम्मीर—मेरी तलवार प्यासी है, चाचाजी! उसे नर-रक्त चाहिए! नर-रक्त! यह फाल्गुन का महीना है। थोड़े दिनों में

होली आने वाली है। मेरा जी चाहता है, इस बार जी भर-कर रक्त की होली खेली जाय।

रणधीर—किस से और कैसे ? यह तो माना कि एक दिन चौहानों के चरणों में भारत के सभी भूपाल अपने शीश झुकाते थे; किंतु, अब हम एक मामूली प्रदेश के स्वामी हैं। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

हम्मीर—लेकिन, मेरा तो हृदय फटा पड़ता है। मेरे पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते। प्राणों में ज्वालामुखी जल रहा है। छोटे से प्रदेश का स्वामी—हम्मीर—विनाश की भैरव-मूर्त्ति बनकर अपनी हुंकार से भारत का प्रत्येक कोना कँपा देगा। एक बार फिर चौहानी तलवार के तेज से संसार की आँखों में चकाचौंध पैदा होगी।

(जंगल में बड़े ज़ोर की शेर की दहाड़ सुनाई देती है)

रणधीर—लो, कोई शेर आता है। विदेशियों से लोहा लेने के पहले इसी से दो-दो हाथ करो। चलो, उसे खोजें।

हम्मीर—जाने भी दो, चाचाजी ! वह नर-मांस का लोभी अपनी बलि देने स्वयं यहाँ आ जावेगा। क्या उसे कहीं खोजने जाना है। जिस तरह पतंगे दीप-शिखा पर टूट कर जान देते हैं, उसी तरह हिंसक पशु हम्मीर की तलवार पर टूटेंगे।

(फिर शेर की दहाड़ सुनाई देती है)

रणधीर—जान पड़ता है, यहाँ कोई और भी शिकारी है। शेर घायल होकर चीख रहा है।

हम्मीर—कौन दो सर वाला मेरे शिकार पर हाथ साफ़ करने

आया है । जिसने शेर का शिकार किया होगा उसका मैं शिकार करूँगा ।

रणधीर—नहीं, हम्मीर, किसी बहादुर से व्यर्थ ही रार नहीं बढ़ाते ।

(मीर महिमा का रक्त से रँगी तलवार हाथ में पकड़े और कंधे पर शेर की लाश लादे हुए प्रवेश)

हम्मीर—बहादुर, शेर को रख दो । तलवार सम्हालो ।

मीर महिमा—किस लिए ?

हम्मीर—चौहानी तलवार ज़ंग उतारना चाहती है ।

मीर महिमा—आप कौन हैं ?

रणधीर—ये हैं रणथंभौर के महाराव हम्मीरसिंह चौहान और मैं इनका चाचा रणधीरसिंह ।

मीर महिमा—आप दोनों की शोहरत[1] तो दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी को भी खटकती है । जिसने दिल्ली से लेकर देवगिरि तक फतह का डंका बजाया है वह भी...

हम्मीर—हम से लड़ना चाहता है । वह सुदिन न जाने कब आएगा, पहले तुम से दो-दो हाथ करूँगा । तुमने मेरे शिकार को मारा है, मैं तुम्हें मारूँगा ।

मीर महिमा—अगर आपकी यही मर्ज़ी है तो थोड़ा ठहर जाइए । थोड़ी लकड़ियाँ जमा करके इस शेर का गोश्त पका कर खा

---

१. प्रसिद्धि, ख्याति ।

लूँ। तीन दिन से कुछ खाया नहीं है। पेट भरने के बाद ज़रा आराम से मर सकूँगा।

हम्मीर—तुम कौन हो, बहादुर, और क्यों तीन दिन से तुम ने कुछ नहीं खाया ?

मीर महिमा—मुझे मीर महिमा कहते हैं। बादशाह अलाउद्दीन की फ़ौज़ का एक सिपहसालार मैं भी था।

रणधीर—अब नहीं हो ?

मीर महिमा—इसी लिए तो पेट से भूख का रिश्ता जुड़ गया है। बादशाह ने नाराज़ होकर मुझे निकाल दिया है और मुनादी पीट दी है कि जो कोई मुझे पनाह देगा उसके जान-माल की .खैर नहीं है।

हम्मीर—तो तुम रणथंभौर चलो।

मीर महिमा—मैं मुसलमान हूँ।

हम्मीर—इंसान तो हो न। इंसान होने से काम चल जाएगा। आज से तुम मेरे भाई हुए।

मीर महिमा—मेरी ख़ातिर आफ़त ....

हम्मीर—आफ़त ! हः हः ! क्या बच्चों जैसी बात करते हो ! जो अग्नि-पुत्र हैं, जिनकी माताएँ, पत्नियाँ और बहनें हँसते-हँसते आग में जीवनाहुति चढ़ा देती हैं, वे क्या आफ़तों से डरते हैं ! जंगली जानवरों का शिकार करते-करते मैं ऊब गया हूँ। किसी ज़बरदस्त शक्ति से लोहा लेने को दिल बेचैन है। डरो मत मीर ! मेरे दिल में जगह है और रणथंभौर के क़िले में भी। दिल्ली के

जैसे भव्य भवन वहाँ न मिलेंगे, लेकिन एक भाई का प्यार तो मिलेगा ही।

मीर महिमा—शुक्रिया! मैं अपने सबब किसी को मुसीबत में नहीं डालना चाहता। एक जान की ख़ातिर हज़ारों जानें बरबाद नहीं कराना चाहता।

हम्मीर—जो जानें बरबाद होने के लिए बनी हैं, उन्हें विनाश से कौन बचा सकता है? क्षत्रिय का एक पैर सेज पर और दूसरा चिता पर होता है। आप क्षत्रियों को नहीं जानते।

मीर महिमा—जानता क्यों नहीं, महाराव! लड़ाई के मैदानों में मैंने उन्हें देखा है। उनकी बहादुरी की इज्ज़त की है। सच पूछो तो हम पठान भी आप ही लोगों के भाई हैं। इस्लाम क़बूल करने के पहले सारा अफ़गानिस्तान आर्यों का मज़हब मानने वाला था।

हम्मीर—मियाँ, छोड़ो भी इतिहास को। सदियों पहले तुम्हारे बुज़ुर्ग क्षत्रिय थे, क्या इसीलिए मैं तुम्हें ज़्यादा चाहने लगूँगा? मेरे लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि तुम वीर पुरुष हो, संकट में हो और तुम्हें शरण देने में विपत्ति है। तुम्हें गले लगाना फूलों का हार पहनना नहीं, काँटों पर सेज बिछाना है। हम लोग तो विपत्तियाँ खोजते फिरते हैं। देखता हूँ, कौन रणथंभौर की चट्टानों से अपना सर टकराने आता है। लाओ अपना यह शेर। तुम भूखे हो, फिर बोझ क्यों ढोते हो?

(मीर महिमा से शेर को छुड़ाकर अपने कंधे पर लादना चाहता है)

मीर महिमा—**रहने दो, महाराव! यह भूखा पठान ऐसे दो शेरों को अभी और लाद सकता है।**

(शेर के लिए दोनों खींचा-तानी करते हुए चले जाते हैं। पीछे-पीछे रणधीर भी चले जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[**स्थान**—दिल्ली में मीर गभरू के मकान का एक कमरा। कमरे में खूँटियों पर तलवारें, तीर, कमान, ढाल, आदि अस्त्र-शस्त्र टँगे हैं। मीर गभरू मसनद के सहारे लेटा हुआ हुक्का पी रहा है। एक बाँदी पानों से भरी हुई तश्तरी रख जाती है। मीर गभरू कुछ झुँझलाहट से हुक्के की लेजम फेंक देता है। खड़ा हो कर पान की तश्तरी को लात मारता है।]

मीर गभरू—**कुछ नहीं, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यह रईसी किस काम की! आज रईस, कल भिखारी! मैं यहाँ ऐश कर रहा हूँ, और मेरा भाई मारा-मारा घूमता होगा। एक मसनद पर टिक कर बैठा है, दूसरा ज़मीन पर पड़ा होगा।** (विचार-मग्न होकर खड़ा रहता है)।

(जमाल खाँ का प्रवेश)

जमालखाँ—(मीर गभरू के कंधे पर हाथ रख कर) **कहिए, मीर साहब! किस सोच में पड़ गये?**

मीर गभरू—कुछ नहीं, खाँ साहब ! मेरा एक बाज़ू कट गया है। मेरी आँखों की रोशनी चली गई है। मेरे दिल का चिराग बुझ गया है। जब से महिमा गया है तब से किसी काम में मेरा मन नहीं लगता।

जमालखाँ—लेकिन, भाई, यह तो बादशाह का .जुल्म है। आज, धोखेबाज़ी से अपने चाचा को मौत के घाट उतार कर दिल्ली की बादशाहत पर कब्ज़ा कर लेने वाला, अल्लाउद्दीन हम लोगों की जड़ खोद डालना चाहता है। मैं तो कहता हूँ मीर साहब, मीर महिमा ने ग़लती की जो दिल्ली को छोड़ कर चले गए। आपके और उनके इशारे की देर है, अलाउद्दीन की हस्ती को हम मिट्टी में मिला दे सकते हैं।

मीर गभरू—बहादुर आदमी गुस्सा नहीं करता। अलाउद्दीन हमारी क़ौम की शान है। उसकी हस्ती को मिटाकर हम अपनी ही हस्ती को मिटा छोड़ेंगे। मीर महिमा मुझे जान से ज़्यादा प्यारा है, लेकिन उससे ज़्यादा प्यारी है मुझे मेरी क़ौम ? अलाउद्दीन ने मेरे दिल पर जो घाव किया है, वह मैं ज़िंदगीभर नहीं भूल सकता, फिर भी वक्त पड़ने पर मैं उसके लिए जान देने में नहीं हिचकूँगा।

जमाल—लेकिन, आप अलाउद्दीन की चालों को नहीं जानते। न वह हिन्दुओं का है, न मुससमानों का। उसने हम लोगों की मदद से अफ़गानिस्तान से देवगिरि तक अपनी सलतनत फैला ली है और अब वह अपने आप को महफ़ूज़[1] करने के लिए सभी सरदारों,

१. सुरक्षित।

रईसों और अमीरों को मिटा डालना चाहता है। आज महिमाशाह गया, कल मीर गभरू जायँगे, परसों जमालखाँ! वह इस हक़ में नहीं है कि हम रईस आपस में मिलकर ताक़तवर बनें।

गभरू—यह तुम कैसे जानते हो?

जमाल—यह तो सूरज की रोशनी की तरह ज़ाहिर है। मैंने अपनी लड़की की शादी महरमखाँ के लड़के से करनी चाही। बादशाह ने इजाज़त नहीं दी। वह दो अमीर घरानों में रिश्ता नहीं होने देता। वह डरता है कि हम लोगों में इतनी ताक़त न आ जाए कि हम उसपर हावी[१] हो सकें। वह हमें अपना हथियार बना कर रखना चाहता है, हम में हथियार पकड़ने की ताक़त नहीं पैदा होने देना चाहता।

गभरू—वह होशियार है। जो पिछली तवारीख़ से फ़ायदा नहीं उठाता वह बेवकूफ़ है। अमीरों को ताक़तवर बनने दिया जाय तो वे राज्य की हुकूमत में गड़बड़ डालते हैं। इंतज़ाम में ख़लल[२] पैदा करते हैं। रज़िया बेगम को अमीरों ने कैसे नाच नचाए, क्या यह तुम नहीं जानते? हम में इतनी ताक़त क्यों पैदा हो कि हम लालचभरी निगाह से तख्त को देखने लगें? हमारे दिल में खुद-परस्ती[३] का शैतान अपना घर क्यों बनावे? हमें इतनी ही ताक़त चाहिए कि हम अपनी क़ौम के सिपाही बने रहें। हम लोगों की बागडोर एक ही शख्स के हाथ में हो। देखो, भाई, यह सल्तनत है एक बग्घी। हम लोग इस बग्घी को खींचने वाले घोड़े हैं। हमारी

१. वश में रखने वाला। २. विघ्न। ३. स्वार्थसिद्धि।

लगाम अगर एक आदमी के हाथ में रहेगी तो हम इसे खींच सकेंगे और अगर सब घोड़े अपनी-अपनी मर्ज़ी से चलने लगे, तो बग्घी भी चकनाचूर हो जाएगी और घोड़े भी घायल हो जाएँगे। मेरे भाई, कौम की इस बग्घी को हाँकने का काम आज अलाउद्दीन कर रहा है। हम अगर ग़लत चाल चलेंगे तो उसके कोड़े हमें खाने ही पड़ेंगे।

जमालखाँ—लेकिन, हमें कुछ तो आज़ादी होनी चाहिए। उसे हम पर भरोसा रखना चाहिए। हम क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, कहाँ जाते हैं, कौन-कौन हमारे दोस्त हैं, इन सब बातों की ख़बर रखने की बादशाह को क्या ज़रूरत है? आये दिन अमीरों की तौहीन[1] होती है। यह सब क्या वह अपनी क़ौम की बहबूदी[2] के लिए कर रहा है। यह सिर्फ उसकी खुदगरज़ी की भूख है, और कुछ नहीं। वह इस्लाम की नहीं, अलाउद्दीन की, बात सोचता है। इस्लाम में हरेक भाई बराबर है, क्या बादशाह, क्या भिखारी। अपने रात-दिन के काम में सब आज़ाद हैं। फिर क्यों वह हमारी आज़ादी पर हमला करता है।

गभरू—मैं यह जानता हूँ कि अलाउद्दीन अपने आपको महफ़ूज़ नहीं समझता। और हरेक आदमी, जिसने अपनी इमारत धोखेबाज़ी और ख़ून-ख़राबी की नींव पर खड़ी की है, कभी अपनी हस्ती को महफ़ूज़ नहीं समझ सकता। यह बीमारी है जो उसे खाए जा रही है। जो सलतनतें मुहब्बत की बुनियाद पर खड़ी

---

१. अपमान। २. भलाई।

की जाती हैं, उनकी रखवाली वक्त अपने आप कर लेता है। कितना अच्छा होता कि जितनी ताक़त अलाउद्दीन को मिली है उसे वह मुहब्बत के मसाले से मज़बूत करता। मुझे डर है, जमालखाँ, कि यह सलतनत ज़्यादा दिनों तक कायम न रहेगी। हिंदू ही नहीं, हम मुसलमान भी एक दूसरे के दुश्मन बनेंगे। गुलामों को ख़िलजियों ने ख़तम किया, इन्हें कोई और पठान का बेटा ख़तम करेगा। मुझे तो हिंदुस्तान में न हिंदुओं का, और मुसलमानों का, वक्त अच्छा नज़र आता है। क्या हुआ, दो-चार सदी हम लड़ते-झगड़ते बने रहे। यह बना रहना बना रहना नहीं है।

(महरमखाँ का प्रवेश)

जमालखाँ—आइए, वज़ीर महरमखाँ साहब !

महरमखाँ—आप भी यहीं हैं। मैं आप दोनों से कुछ सलाह करना चाहता हूँ।

गभरू—कहिए वज़ीर साहब !

महरमखाँ—मीर महिमा रणथंभौर में है। महाराव हम्मीर ने उन्हें बहुत शान से ठहराया है।

गभरू—मेरा अच्छा भाई ! खुदा का शुक्र है कि उसने तुम्हें अच्छी जगह पहुँचा दिया।

महरमखाँ—लेकिन बादशाह नहीं चाहते कि कहीं भी मीर महिमा शाह को ठिकाना मिले। उन्होंने महाराव को ख़त लिखा है कि वह मीर महिमा को हमारे सुपुर्द कर दें। अलाउद्दीन अब उन्हें ज़िंदा रखना ख़तरनाक समझने लगे हैं।

गभरू—हूँ !

जमाल—क्या समझते हो, मीर साहब ?

गभरू—कुछ नहीं; मैं बँधा हुआ हूँ। मेरा मुहब्बत-भरा दिल क्या चाहता है, इस का शायद आप लोग अंदाज़ा नहीं लगा सकते। लेकिन, मुझे अपने जज़्बातों[1] पर काबू पाना ही पड़ेगा।

महरम—मैंने बादशाह को बहुत समझाया कि वह राजपूतों से छेड़छाड़ न करे, लेकिन वह तो ताक़त में अंधा हो रहा है। वह कहता है कि यदि हम्मीर ने मीर महिमा को मेरे सुपुर्द नहीं किया तो रणथंभौर का एक भी पत्थर साबित न रहने दूँगा। मेरी ताक़त............!

जमाल—उसकी ताक़त ! हमीं लोग तो उसकी ताक़त हैं।

गभरू—हाँ, हमीं लोग उसकी ताक़त हैं। आज वह हमसे कहता है तुम अपने हाथ से अपना कलेजा चीर डालो, अपने हाथ से अपनी आँखें फोड़ डालो, अपने हाथ से प्याले में विष घोलो और पी लो। या ख़ुदा !

महरम—चलो भाई मीर गभरू, और भाई जमालखाँ ! हमें इस मसले[2] पर सोचना होगा। यह बहुत नाजुक सवाल है।

जमाल—बेशक !

गभरू—खुदा, तुम बहुत सख्त इम्तहान ले रहे हो।

(तीनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

---

१. भावनाओं। २. समस्या।

चौथा दृश्य

[**स्थान**—रणथंभौर में महाराव हम्मीर का राज-दरबार।
स्वर्ण-सिंहासन पर हम्मीर बैठे हैं, उनकी दाहिनी ओर
की कुर्सी खाली है। बाईं ओर मीर महिमा
शाह बैठे हैं। मीर महिमा के बाद सुरजनसिंह
हैं। कुछ और दरबारी भी बैठे हैं।]

हम्मीरसिंह—**मेरे बहादुर भाइयो! आज हमारे लिए स्वर्ण-अवसर आया है। मीर महिमा शाह जैसे बहादुर हमारी जाति में शामिल हुए हैं।**

एक दरबारी—**हमारी जाति में.........!**

हम्मीरसिंह—**हः हः हः! तुम डर गए, भूरिसिंह जी राठौर! जाति में शामिल होने से मेरा मतलब यह नहीं कि उन्होंने हमारा धर्म स्वीकार कर लिया है। सभी बहादुरों की एक जाति है। चाहे मुसलमान हो, चाहे हिंदू, चाहे किसी और जाति का, जो वीर है वह हमारा सगा है, वही हमारी जाति का है। इसी दृष्टिकोण से मैंने मीर महिमा शाह को अपना भाई बनाया है। जब से महिमा शाह यहाँ आए हैं, उनकी शक्ति, चातुर्य और सज्जनता ने मुझे उनका अधिकाधिक प्रेमी बनाया है। मेरी खुशी का छोर नहीं मिलता। सुरजनसिंह, लेखा को बुलवाइए। आज जम कर जलसा मनाया जावे।**

सुरजनसिंह—जो आज्ञा महाराव। (अभिवादन करके प्रस्थान)

भूरिसिंह राठौर—धृष्टता क्षमा हो तो कुछ निवेदन करूँ।

हम्मीरसिंह—जो किसी की तलवार को नहीं रोकता, वह क्या किसी की ज़बान रोकेगा ? दिल में रक्खे रहना राजपूतों का स्वभाव नहीं है। अपनी बात राजपूतों को अवश्य कहनी चाहिए।

भूरिसिंह—मैं अपने महमान का अनादर नहीं करना चाहता, उनके मुँह पर कुछ कहना सभ्यता के विरुद्ध समझता हूँ।

मीर महिमा—बहादुर आदमी साफ़गोई[1] को पसंद करता है। इसमें अनादर की क्या बात ? आप कहिए।

भूरिसिंह—जब कि शेष भारत पराधीनता के पाश में बँध चुका है, हमें सावधानी से काम लेना चाहिए। इस में संदेह करने की गुंजाइश नहीं कि मीर साहब बहुत वीर, उदार और सज्जन हैं, फिर भी हमें अचानक ही किसी सज्जन पुरुष पर भी इतना विश्वास नहीं करना चाहिए। मीर साहब को आप जो सुख-सुविधा देना चाहें दें, लेकिन रणथंभौर की सीमा में राज-नीति के अंतःपुर में मैं इनका प्रवेश उचित नहीं समझता।

(सुरजनसिंह का लेखा के साथ प्रवेश। दोनों का अभिवादन के पश्चात् यथा स्थान बैठना)

हम्मीरसिंह—भूरिसिंह, आप मीर साहब के संसर्ग में आएँगे तो संदेह के बादल स्वयं हट जाएँगे। यह पीछे देखा जाएगा, अभी तो

---

१. स्पष्टवादिता।

थोड़ा मनोरंजन होने दो। (लेखा से) छेड़ो न, लेखा, तुम अपनी तान। संगीत के प्रवाह में यह राजनीति की श्रांति बह जाए। नीरस जीवन में रस की वर्षा हो।

लेखा--(गान और नृत्य)

छेड़ो वंशी की तान।
मैं नाचूँ ता-ता थैया,
तृण चरना भूले गैया,
है वायु बही पुरवैया,
है हमें न अपना ज्ञान।
छेड़ो वंशी की तान॥
पथ रोक रहे पुरवासी,
पर बढ़ती आती दासी,
है जहाँ हृदय की काशी,
हैं चले वहीं पर प्रान।
छेड़ो वंशी की तान॥
तुम मरुथल में जीवन के,
आओ आओ घन बन के,
मैं नाचूँ मयूर बन के।
बरसाओ रस अनजान।
छेड़ो वंशी की तान।

(रणधीरसिंह का प्रवेश)

(हम्मीरसिंह खड़े होते हैं । अन्य दरबारी भी । संगीत रुक जाता है । रणधीरसिंह अपना आसन ग्रहण करते है । सब बैठते हैं ।)

हम्मीर सिंह--लो लेखा ! (पुरस्कार देते हैं) अब जाओ ।

(लेखा अभिवादन कर के प्रस्थान करती है ।)

रणधीर सिंह—हम्मीर ! वीरों के जीवन में मनोरंजन को भी स्थान होना चाहिए। रेगिस्तान में कहीं भी ताल, बावड़ी और हरियाली न हो तो क्या वहाँ ऊँट जैसा नीरस जानवर भी रह सकता है । किंतु रस की वंशी बजाने का भी समय होता है ।

हम्मीर--चाचा जी, राजपूती मर्यादा का पालन करने में आप का भतीजा कभी अयोग्य सिद्ध न होगा ।

रणधीर—यह मैं जानता हूँ । तुम हमारे कुल के आशा-सूर्य हो। हमें तुम्हारे शौर्य और बल पर विश्वास है । फिर भी आँखें बंद करके रहना ठीक नहीं । मीर महिमाशाह की मित्रता हमारी कड़ी परीक्षा लेने वाली है। यह देखो, दिल्ली से एक दूत यह पत्र लेकर आया है ।

हम्मीर—पढ़ दीजिए चाचा जी !

रणधीर सिंह—(पत्र पढ़ते हैं) !

"महाराव हम्मीर सिंह जी,

हमें यह जान कर ताज्जुब हुआ कि आपने हमारे दुश्मन मीर महिमा शाह को पनाह दी है। आज तक हमने आपको अपना दोस्त समझा है, इसलिए आपसे अर्ज़ करते हैं कि हमारे दुश्मन



को अपनी रियासत की हद से निकाल दें। अगर आपने ऐसा नहीं किया तो दिल्ली की ताक़त रणथंभौर के घमंड को चकनाचूर करने में कुछ उठा न रखेगी !

आपका

अलाउद्दीन"

हम्मीर—दिल्ली की ताक़त ! जिस दिल्ली पर कभी हमारा अधिकार था, वहीं से यह धमकी आ रही है। कहिए, भूरिसिंह जी क्या किया जाय ?

भूरिसिंह—राजपूत धमकी का जवाब तलवार से देता है। अभी तक मैं मीर साहब को आश्रय देने के पक्ष में नहीं था, किंतु, जब उनका यहाँ रहना हमारी राजपूती आन की परीक्षा चाहता है तो हम उससे हटना कायरता समझते हैं।

सुरजनसिंह—महाराव, वीरता अच्छा गुण है। किंतु, वीरता के अभिमान में हमें आत्म-हत्या नहीं करनी चाहिए। मुट्ठी भर सैनिकों से सुविस्तृत और सुसंगठित शक्ति का कैसे सामना किया जाएगा ?

मीर महिमा—महाराव, इस नाचीज़ के लिए इतनी बरबादी और तबाही क्यों न्योतते हैं ? मैं अकेला ही दिल्ली के भरे दरबार में अलाउद्दीन से निबट लूँगा। मुझे जाने दीजिए।

हम्मीर—आप राजपूती आन से शायद परिचित नहीं हैं, मीर साहब ! आपको जाने देना ही हमारी पराजय है। सम्राट् पृथ्वीराज के वंशज अपने सर पर कायरता का कलंक नहीं लगने

दे सकते। राजपूत शरणागत के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देता है। रणथंभौर में जब तक एक भी राजपूत जीवित है वह आपका अंग-रक्षक बन कर रहेगा।

मीर महिमा—यह है इंसानियत का सच्चा नमूना। दिल चाहता है अपनी हस्ती को मिटा कर आपके कदमों के नीचे बिछा दूँ। अपने आपको जलाकर आपकी आँखों का सुरमा बना दूँ। ऐसे इंसानों को मैं हैवानों के हवाले नहीं करना चाहता।

हम्मीर—हम हैवानों के दाँत खट्टे करना जानते हैं, मीर साहब। हम अपनी आन पर अड़े हुए मर जाएँगे, युग-युग को अमर हो जाएँगे। यदि आपको शत्रु के हवाले कर देंगे तो हम जीते जी मर जाएँगे।

मीर महिमा—आप हठ करते हैं।

हम्मीर—हाँ, मैं हठ करता हूँ। याद रखिए, 'तिरिया-तेल हमीर-हठ चढ़े न दूजी बार।' बोलो, मेरे वीर सरदारो तुम्हें मेरा निश्चय स्वीकार है ?

सब—हाँ स्वीकार है।

हम्मीर—मैंने कहा था न आज स्वर्ण-अवसर है। अब आप लोग जाएँ।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[**स्थान**—नलहारणोगढ़ की बावड़ी के पास की पगडंडी।
समय—संध्या। ग्राम की स्त्रियाँ पहले दृश्य के समान ही पानी भरने जा रही हैं या भर-कर आ रही हैं। पहले दृश्य वाली युवतियों का रीते घड़े लिए हुए प्रवेश।]

चपला—(गाती है)

पगली, तू किस मद में भूली ?
किसने आज क्षितिज पर देखा,
गहरी क्यों है धूमिल रेखा,
लिखती नियति किसी का लेखा,
किसने जीवन की तह छू ली ?
पगली तू किस मद में भूली ?
आज हिल उठी है गिरि-माला,
आज हुआ जीवन मतवाला,
पी-पीकर विनाश की प्याली,
सर पर आज मृत्यु है झूली !
पगली तू किस मद में भूली !

दूसरी युवती—रहने भी दे यह गीत। आज कुछ अच्छा नहीं लगता। किसी विपत्ति की छाया-सी दशों दिशाओं में दिखाई देती है।

चपला—सोचने बैठें तो जीवन ही एक बहुत बड़ी विपत्ति नज़र आवे। इसलिए मैं तो कहती हूँ, हँसते-गाते-खेलते हुए ज़िंदगी का रास्ता पार करते चलो। किस दिन हवा के झोंके से जीवन-दीपक बुझ जायगा इसे कोई जानता है ?

(उत्तर दिशा की ओर से धूल का बादल-सा उठता नज़र आता है)

दूसरी युवती—देखो, उधर उत्तर दिशा में। धूल से सारा आकाश भर गया।

(गढ़ पर से तुरही बजती है)

चपला—भागो-भागो, बहन ! यह तो किसी शत्रु की सेना है। सुनती नहीं हो गढ़ पर से तुरही बज रही है। आज जान पड़ा कि क्यों इतना ख़र्च करके गढ़ में बावड़ियाँ खुदवाई जा रही थीं। विनाश अपना षड्यंत्र रच रहा था।

दूसरी युवती—तुम कहती थीं न, हँसते-हँसते जीवन का रास्ता पार करना चाहिए। लेकिन अगर यह सेना गढ़ के फाटक और हमारे बीच में आ पहुँचे तो देखें तुम कैसे हँसते-हँसते यह पग-डंडी पार कर सको, जीवन का रास्ता तो बड़ा लंबा है ?

चपला—(कपड़ों के अंदर से कटार निकाल कर) इसे देखा है ? यह सदा हँसते रहना सिखाती है। किस की शक्ति है कि हमारे जीवन की मुसकान में पाप की छाया डाले ? हम जब तक जीवन का पथ चल सकेंगी पवित्र हँसी हँसेंगी। न कभी पश्चात्ताप के आँसू बहाएँगी, न कभी पाप का अट्टहास करेंगी। ऐसा ही है हम राजपूतनियों का जीवन। तुरही पुकार-पुकार कर कह रही है हमें

तुरंत गढ़ में चले जाना चाहिए। फिर फाटक बंद हो जायगा। उसके बाद न जाने कितने दिन बाद यह फाटक खुले। फाटक खुले भी तो कदाचित् किस्मत के फाटक बंद ही रहें।

दूसरी युवती—और किस्मत का फाटक न खुला तब ?

चपला—कुछ नहीं! इस गढ़ में राख का एक बड़ा ढेर होगा, जिसमें राजपूतनियों के जीवन का अमरत्व छिपा होगा, और फाटक के बाहर राजपूतों के शव होंगे, जिनमें राजपूतों का तेज मुसकरा रहा होगा। चलो, अब हम चलें।

(सबका एक ओर से प्रस्थान, दूसरी ओर से मीर गभरू का प्रवेश)

मीर गभरू—कितना बड़ा यकीन मुझ पर बादशाह ने किया है! महाराव से लड़ाई करने और अपने भाई महिमा को गिरफ्तार करके लाने का काम मुझे सौंपा है। मुझे अपने ही जिगर पर वार करने को कहा गया है।

(जमालखाँ का प्रवेश)

जमाल—क्या सोच रहे हो, मीर साहब। यही न, कि भाई का गला कैसे काटूँ। अब आपकी क़ौम-परस्ती की जाँच हो जायगी। मैं कहता हूँ, मियाँ, आपके पास इतनी फ़ौज है। मुझे बताओ, अलाउद्दीन से किस बात में आप कम हैं। महाराव को भी अपना बना सकते हैं। हिंदुस्तान की तवारीख[1] नए सिरे से लिखी जाने लगेगी।

मीर गभरू—तुम बार-बार मेरा दिल टटोलते हो, जमाल! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम कभी अपनी क़ौम को धोखा

१. इतिहास।

नहीं दे सकते। मेरी जगह तुम होते तो तुम भी वही करते जो मैं कर रहा हूँ।

जमाल—क़ौम को धोखा देता! शायद मैं यह न करता। लेकिन, मैं सगे भाई पर तलवार उठाने की भी हिम्मत न कर पाता।

मीर गभरू—तो क्या करते?

जमाल—मैं दिल्ली से यहाँ तक आता ही नहीं। वहीं जमुना में डूब कर जान दे देता। तुम वह काम करने चले हो, जिसे अच्छा कहें या बुरा कहें, इंसान का कहें, फ़रिश्ते का कहें, या शैतान का कहें, कुछ भी समझ में नहीं आता।

मीर गभरू—मैं नौकर हूँ, जमाल! मैंने अपनी ज़िंदगी बेच दी है। दिल और दिमाग़ भी बेच दिया है।

जमाल—लेकिन ईमान।

मीर गभरू—ईमान के खिलाफ़ मैं कुछ नहीं कर रहा। ईमान दुनियादारी के परे की चीज़ है। अपने भाई को भाई समझना, बाकी लोगों को भाई न समझना ईमानदारी नहीं बेईमानी है। दुनिया में सिर्फ एक माँ है और वह है खुदा। जो तुम हो वही महिमा है, वही अलाउद्दीन है, वही हम्मीर है। हम सभी भाई हैं। जब हम हम्मीर के खिलाफ़ तलवार उठाने में नहीं हिचकते तो महिमा के खिलाफ़ उठाने में क्यों हिचकें?

(एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—(कोर्निश करके) हमारे कुछ सिपाही क़िले में जाती हुई कुछ हिंदू औरतों का रास्ता रोक रहे हैं।

गभरू—उन सिपाहियों को सीधे रास्ते लाना होगा। हम मैदान में राजपूतों से तलवार बजाने आए हैं। बेचारी बेबस औरतों का रास्ता रोकने नहीं। चलो जमाल, हम उन बहनों को क़िले में पहुँचा दें। (सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[**स्थान**—रणथंभौर के राज-महल के अंतःपुर का आँगन।
तुलसी के पेड़ के पास महारानी देवल, राजकुमारी
चंद्रकला, तथा कुछ और क्षत्राणियाँ तुलसी पर
जल चढ़ा रही हैं। पास ही थाल में
नारियल, रोली और चावल आदि
टीके का सामान है।]

सभी महिलाएँ—(गाती हैं)

विमल दूज का दिन है आया।

रण के रँग में आँखें लाल,
करके आवें माँ के लाल,
हम टीका करने ले थाल
आईं, बंधु, सजा दें भाल,

ऊषा ने नभ लाल बनाया।
विमल दूज का दिन है आया।

वीरों से कहती क्षत्राणी,
जाँचो तलवारों का पानी,
जाँचो अपनी आज जवानी,
फैले जग में कीर्ति-कहानी,
रण का गान गगन ने गाया।
विमल दूज का दिन है आया।
एक गोद में हम-तुम खेले,
एक साथ हैं सुख-दुख झेले,
अब जाते हो वीर अकेले,
माँ के करने दूर झमेले,
ज्वाला ने है हमें बुलाया।
विमल दूज का दिन है आया।

[हम्मीरसिंह, मीरमहिमा तथा राजकुमार, जय, विजय और अजय का प्रवेश]

हम्मीर—मीर साहब, आप हमारे होली के त्योहार में शामिल हो ही चुके हैं। रंग की होली आपने खेली ही थी। आज हम अपना भैया दूज का त्योहार दिखाने आपको लाए हैं।

मीर महिमा—मुझ पर हिंदुओं का रंग चढ़ चुका है। ऐसे त्योहारों में शामिल होने के लिए मेरा तो जी तड़पता रहता है।

हम्मीर—होली के दिन हम लोग प्रेम के रंग में सर से पैर तक डूब जाते हैं। इस दिन न कोई बड़ा होता न छोटा। सबको मनमानी करने का अधिकार होता है। प्रकृति ने हमें जिस

स्वाभाविक रूप में भेजा है, वही रूप हम होली के दिन धारण करते हैं। हृदय, आत्मा, शरीर सब कुछ रंगीन हो उठता है। आनंद के तांडव में हम भेद-भाव, भूत-भविष्य, पाप-पुण्य सब भूल जाते हैं। ओह कितनी तन्मयता, कितना रस और कितना आनंद है हमारे इस त्योहार में !

मोर महिमा—मैं तो चाहता हूँ, यह मस्ती ज़िंदगी भर बनी रहे।

जय—संसार का कठोर सत्य हमारा रंग फीका कर देता है।

विजय—पिचकारी छोड़ कर हमें तलवार पकड़नी पड़ती है।

(सहसा चपला का प्रवेश। चपला के वस्त्र अस्त-व्यस्त, सर उघड़ा हुआ, बाल फैले हुए, और हाथ में रक्त से रँगी हुई नंगी तलवार है।)

चपला—और रंग की नहीं रक्त की होली खेलनी पड़ती है।

राजकुमारी—(आगे बढ़कर चपला का हाथ पकड़ कर) तुम चपला ! तुम्हारा यह क्या हाल है ?

चपला—क्षत्राणियों का सदा यही रूप रहता है, राजकुमारी। वे हृदय की आरसी में देखें तो उन्हें दिखाई दे कि उनके सिर का सिंदूर अपने ही खून से रँगा हुआ होता है।

राजकुमारी—तुम्हारी माँग का सिंदूर क्या हुआ ?

चपला—उसे अलाउद्दीन की जीभ चाट गई। तीन दिन से नलहारणीगढ़ में रक्त की होली खेली जा रही थी।

हम्मीर—हमने चाचाजी की अधीनता में सेना भेजी है।

चपला—पर अब क्या है ? गढ़ समाप्त हो गया। पुरवासी, जो विध्वंस से बचे, भाग कर दूसरे स्थान पर चले गए। मेरे पिता, पति, भाई सब ·····

महारानी—(चपला के सर पर हाथ रख कर) बेटी, हमारे रहते तुम्हें क्या अभाव ?

चपला—माँ, अभाव ! सारे संसार का रक्त भी सिंदूर की लाली से हलका है।

महारानी—यह सच है, बेटी ! पर, क्षत्राणियाँ विधवा होने पर भी विधवा नहीं होतीं। उनके पति मर कर भी नहीं मरते। उनकी सेज·····

चपला—चिता की ज्वाला पर बिछती है। पर मैं उस सेज पर सोने से भाग आई हूँ। मुझे कुछ नर-पशु पकड़ कर बादशाही हरम में पहुँचाने चले थे, मैं उन्हें यमलोक पहुँचा आई हूँ।

मीरमहिमा—शाबास, बहन !

चपला—होली के दिन मेरा सुहाग नष्ट हुआ है; जब तक मैं देश के आबाल-वृद्ध में प्रतिहिंसा की होली नहीं जला दूँगी, विश्राम न लूँगी। गली-गली, पथ-पथ घूम-घूम कर प्रतिशोध-गान गाऊँगी।

हम्मीर—बेटी, तुम्हारा गीत हमारे प्राणों में सदा गूँजता रहता है।

जय—बहनों के संकेत पर अपने मस्तक चढ़ाने को हम सदा प्रस्तुत रहते हैं।

विजय—बहन, तुम घर में बैठ कर हमें आशीर्वाद दो, शत्रु की नृशंसता स्वयं देश के प्राणों को जगा देगी। शत्रु के रक्त से हम तुम्हारी सूनी माँग को रँगेंगे।

चपला—मेरे प्राणों की ज्वाला क्या मुझे चुप रहने देगी ? यह तुम्हारी उदारता है कि मामूली क़िलेदार की बेटी को अपनी बहन कहते हो।

हम्मीर—नहीं बेटी, क्षत्रियों में कोई बड़ा छोटा नहीं। हम सभी एक तेज के कण हैं। व्यवस्था के लिए कोई सिंहासन पर बैठा है, कोई द्वार पर खड़ा है। वास्तव में हम सब भाई-भाई हैं। जिस दिन राजपूत एक दूसरे को छोटा-बड़ा समझने लगेंगे उनका बल क्षीण हो जाएगा।

महारानी—आज भैयादूज है। हमें भाइयों का टीका करना है। मीर साहब आप हमारे मेहमान हैं—अतिथि हैं। हिंदू अतिथि को देवता के तुल्य मानते आए हैं, इसलिए सबसे पहले आपका टीका होगा।

(मीर महिमा आगे बढ़ता है)

मीर महिमा—मेरी किस्मत आज जागी है। क्षत्राणी के पाक हाथों का टीका मेरी ज़िंदगी को पाक कर देगा। जिनके सर पर यह टीका लगता है, उनसे सूरज-चाँद भी रश्क[1] करते हैं। आपने मुझे अपना भाई माना है, इससे मेरा दिल फूला नहीं समाता।

(महारानी मीर महिमा के सर पर टीका करती हैं)

---

१. ईर्ष्या।

मीर महिमा—(थाल में एक हार रखता है) मेरे पास है ही क्या जो आपकी भेंट करूँ। यह ज़िंदगी का फूल है जिसमें सुगंध है या नहीं, लेकिन काँटे तो ज़रूर हैं, यह मैं जानता हूँ। तुम्हारे भाई ने तुम्हारी मुसकराती हुई बगीची में काँटे ही काँटे बिछा दिए हैं।

राजकुमारी—(जय, विजय और अक्षय से) आओ भाई जय, विजय और अक्षय, रोली-चंदन को कृतार्थ करो।

(जय, विजय और अक्षय बढ़कर टीका कराते हैं और थाल में एक-एक हार रखते हैं)

जय—बहन, कौन जाने फिर यह त्योहार देखने का अवसर हमें मिले या नहीं! किसे पता तुम्हारा यह तिलक हमें मृत्यु के राज्य का सम्राट ही बना दे!

चपला—और मैं भी तिलक करूँगी। मैं सर्वस्वहीना हूँ। मेरे पास न रोली है, न चंदन। मेरी तलवार में जो रक्त लगा हुआ है उसी से मैं टीका करूँगी। बदले में हार नहीं, सिर माँगूँगी। बोलो, कुमार, दोगे? साहस हो तो आगे बढ़ो।

(तीनों कुमार आगे बढ़ते हैं। चपला, तलवार में लगे रक्त से अँगूठा गीला करती है और राजकुमारों के भाल पर टीका लगाती है। सभी क्षत्राणियाँ गाती हैं)

वीरों से कहती क्षत्राणी।
जाँचो तलवारों का पानी॥

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—छाछगढ़ के पास के वन की एक पगडंडी।
दो राजपूत सैनिकों का प्रवेश]

पहला सिपाही—भाई गुमानसिंह, यह युद्ध तो द्रौपदी के चीर की तरह लंबा होता जाता है।

दूसरा सिपाही—भाई गंभीरसिंह ! सुनते हैं, अलाउद्दीन का दिमाग़ ठिकाने आ चला है। वह महाराव से संधि-चर्चा करने लगा है।

गंभीरसिंह—हमारे महाराव की दृढ़ता के आगे कौन नहीं झुकेगा ? लेकिन, अलाउद्दीन आत्म-सम्मान को मिट्टी में मिलाकर दिल्ली लौट जाएगा, यह भी हमें सत्य नहीं जान पड़ता।

गुमानसिंह—मैं भी यहीं सोचता हूँ। इन छः महीनों में हमारे देश का जो सर्वनाश हुआ है, क्या इसे महाराव देख नहीं पाते ? गाँव के गाँव जल कर राख हो चुके हैं। कोई घर ऐसा नहीं, जिसका

कोई न कोई सदस्य रणभूमि में सोया हो। यह युद्ध हमें ही अधिक हानि पहुँचा रहा है। फिर बादशाह क्यों संधि करने लगा ?

गंभीरसिंह—यह तो सच है, गंभीर, कि धन और जन में हम बादशाह की शक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। वह वर्षों तक इसी प्रकार गढ़ को घेरे रह सकता है। हाँ, हमें आशा है तो केवल महाराव के रण-कौशल से। उन्होंने न केवल गढ़ के भीतर से ही युद्ध करने की रक्षणात्मक नीति का पालन किया है बल्कि चाचा रणधीरसिंह जी को उन्होंने बाहर से आक्रमण करने का कार्य सौंपा हुआ है। छाछगढ़ में अपना अड्डा बना कर वे कभी-कभी शत्रु पर आक्रमण करते हैं।

गुमान—चाचा रणधीरसिंह जी यद्यपि बूढ़े हो चले हैं लेकिन उनका शौर्य आज भी जवानी को लज्जित करता है। उनकी वाणी में आज भी जादू है, आँखों में बिजली है, हाथों में प्रलय है। जिस तरफ़ वे निकलते हैं शत्रु की सेना काई की तरह फट जाती है। वे तीर की तरह घुसते चले जाते हैं।

गंभीर—उन्होंने चौहानों की कीर्ति को उज्ज्वल कर दिया है। जब वे दाँतों से घोड़े की लगाम पकड़े दोनों हाथों से तलवार घुमाते हुए आगे बढ़ते हैं, हम लोगों के हृदय में जोश का तूफ़ान उठ खड़ा होता है। प्राण पागल हो उठते हैं।

गुमान—उस दिन का दृश्य तो हमें भुलाए नहीं भूलता, जब शत्रु की तोपों के आगे वे बढ़ते चले गए थे। उनको इतने संकट में देखकर क्या हम लोग पीछे रह सकते थे ? देखते-देखते वह

आश्चर्यजनक कांड हुआ जिसे देखकर दिशाएँ दंग रह गईं । तोपें पीछे रह गईं और हम आगे हो गए। तोपों के मुँह घूमे और दिल्ली की तोपें दिल्ली की ही सेना पर आग बरसाने लगीं !

गंभीर—यह हमारा सौभाग्य है कि हमें ऐसे वीर पुरुष की अधीनता में युद्ध करने का अवसर मिला है । चलो भाई, देर होगी । हमें न जाने क्यों आज छाछगढ़ में पहुँचने का आदेश मिला है । चलो, जल्दी चलो ।

(दोनों का प्रस्थान । दूसरी ओर से जमालखाँ और मीर गभरू का प्रवेश)

जमालखाँ—भाई, हमें तो आसार अच्छे नहीं नज़र आते। कहाँ मुट्ठी भर राजपूत और कहाँ दिल्ली की इतनी भारी फ़ौज ! क्या पहले भी कभी हमें इस तरह मुँह की खानी पड़ी है। हम जहाँ भी गए हैं फ़तह का सेहरा बाँध कर लौटे हैं ।

मीर गभरू—और इस बार घर से ही कफ़न लेकर चले हैं। क्यों न ?

जमालखाँ—सिपाही तो हमेशा ही सर पर कफ़न बाँधे रहता है । उसकी सेज के नीचे ही उसकी कब्र बनी रहती है ।

मीर गभरू—हर इंसान की सेज के नीचे ही उसकी कब्र खुदी रहती है। जो आँखोंवाला होता है वही देख पाता है। छोड़ो भी इन बातों को; यह बताओ कि अब हमें क्या करना चाहिए ? तुम नहीं जानते, जमाल, हमारे दुश्मन बादशाह के कान भर रहे होंगे कि गभरू अपने भाई को मौत के मुँह से बचाने के लिए लड़ाई सुस्ती

से चला रहा है, नहीं तो मुट्ठी भर राजपूत, ये बुझते हुए चिराग़, हमारी फ़ौजी आँधी के आगे कितनी देर टिक सकते हैं ? मैं जल्द से जल्द यह लड़ाई ख़त्म करना चाहता हूँ। कोई यह न कह सके कि भाई की मुहब्बत ने मुझे नमकहराम या बेईमान बना दिया।

जमाल—क्या मुहब्बत करना बेईमानी है ?

मीर गभरू—नौकरी के वक्त मुहब्बत करना दर-असल बेई-मानी है। मालिक की ज़िंदगी में नौकर की ज़िंदगी मिल चुकी होती है, मालिक की .ख्वाहिशें[1] ही नौकर की .ख्वाहिशें हैं। जो मालिक का दुश्मन है, वह मेरा भी दुश्मन है।

जमाल—उस दिन मीर महिमा को देखा था, जब राव रणधीरसिंह और उन्होंने हमारी फ़ौज पर हमला किया था। उन्हों ने तीरों की बौछार से आसमान भर दिया था। जिस तरह सूरज से हर तरफ़ किरणों फैलती हैं, उसी तरह वे तीरों को फैला रहे थे, और मुँह लाल हो रहा था। वह ठीक सुबह का सूरज मालूम होते थे।

मीर गभरू—उसकी किरणों ने आसमान ही नहीं ज़मीन भी लाल कर दी थी। मेरा जी करता था कि लड़ना छोड़कर सिर्फ़ लड़ाई देखता रहूँ। सच, जमाल, उसने अपने ख़ानदान का नाम रोशन कर दिया।

जमाल—लेकिन आप ही तो कहते थे कि क़ौम का सवाल जब सामने आवे, अपनी या अपने खानदान की इज्ज़त, जान और माल को कुर्बान कर देना चाहिए। इस निगाह से देखा जावे तो

---

१. इच्छा।

क्या उन्होंने अपनी ताक़त क़ौम के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करके अच्छा काम किया है ?

मीर गभरू—उसने अच्छा किया या बुरा यह मैं नहीं सोच पाता। हम नहीं जानते कि अलाउद्दीन का हुक्म क़ौम का ही हुक्म है, और अलाउद्दीन का दुश्मन क़ौम का दुश्मन है।

जमाल—शायद लड़ाई के मैदान में भाई का चेहरा देख कर आपको यह इल्म हुआ है।

मीर गभरू—क़ौम-परस्ती[1] का मैं हमेशा दम भरता रहा हूँ, लेकिन लड़ाई के मैदान में हम्मीर, रणधीर और मीर महिमा को साथ-साथ देख कर मेरे यक़ीन को ठेस पहुँची है। जब मैंने महिमा को हम्मीर के साथ खड़े देखा तो मेरे दिल ने सवाल किया कि क्या ये दोनों एक क़ौम के नहीं हैं ? और जब मैंने अपने आप को महिमा के सामने खड़े पाया है तो मैंने सोचा है कि हम दोनों अलग-अलग क़ौम के तो नहीं हैं ? मैंने बहुत सोचा, और सोच कर इस नतीजे पर पहुँचा कि सारे इंसान एक ही क़ौम के बंदे हैं।

जमाल—फिर ये लड़ाइयाँ क्यों होती हैं ?

मीर गभरू—क़ौमों से क़ौमों की लड़ाई नहीं होती, जमाल ! यह तो इंसान की ख्वाहिशें लड़ती हैं। अलाउद्दीन इस्लाम नहीं है, हम्मीर हिंदू धर्म नहीं है। एक है दिल्ली का बादशाह और एक रणथंभौर का राजा। दिल्ली का बादशाह रणथंभौर के राजा को अपना गुलाम बनाना चाहता है, और वह अपनी आज़ादी बनाए रखना

१. जाति-सेवा।

चाहता है। दोनों का ग़रूर[१] इतने लोगों का .खून करा रहा है।

जमाल—ग़रूर ! क्या ग़रूर बुरी चीज़ है ? जिस इंसान को अपनी आज़ादी प्यारी नहीं, जिसे अपना ग़रूर नहीं क्या वह इंसान है ? महाराव एक मुसलमान भाई की ख़ातिर अपनी सारी क़ौम पर तबाही बुला चुका है। उसे हम मग़रूर[२] कैसे कह सकते हैं !

मीर गभरू—जमाल, शायद, तुम ठीक कहते हो। महाराव का मकसद[३] ऊँचा है, इसलिए उसका ग़रूर इज्ज़त के काबिल है। ऊँचे मकसद के लिए जान देने वाले मर कर भी ज़िंदा रहते हैं।

जमाल—इस ऊँचे मकसद में क्यों न हम भी महाराव का साथ दें।

मीर गभरू—हम जिस तरफ़ खड़े हैं, उसी तरफ़ ईमानदारी से खड़े रहें, इसी में हमारी .खूबसूरती है। सुना है, बादशाह हमारी नाकामयाबी से नाराज़ हुए हैं। वे खुद दिल्ली से चल पड़े हैं। मैं चाहता हूँ, उनके आने के पहले-पहले हम रणथंभौर को ख़त्म कर दें। इसलिए मैंने पहले छाछगढ़ पर हमला करके इसी पर कब्ज़ा करना ज़रूरी समझा है। यहीं से राव रणधीरसिंह अपना जाल बिछाते हैं।

जमाल—ठीक। रणधीरसिंह को घेर कर बेकार कर दिया जाय तो हमारा रणथंभौर का घेरा भी ज़्यादा सुभीते से, ज़्यादा मुस्तैदी[४] से जारी रह सकेगा।

मीरगभरू—चलो, अब चलें।　　　　(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

---

१. गर्व।　　२. घमंडी।　　३. उद्देश्य।　　४. दृढता।

दूसरा दृश्य

[**स्थान**--रणथंभौर का शिवालय। **समय**—अर्धरात्रि।
महाराव हम्मीर शिव-प्रतिमा के आगे हाथ जोड़े बैठे हैं
और तन्मय होकर गा रहे हैं।]

हम्मीर—**शंकर, रुद्र रूप दिखलाओ।**

काले-काले विषधर तन पर,
मुंड-माल लटकाए उर पर,
विमल रमाए भस्म बदन पर,
विष पीते, मुसकाते आओ।
शंकर, रुद्ररूप दिखलाओ।

प्रभो, दिखाओ तांडव नर्तन,
थर थर काँपे वसुधा का मन,
खुले तीसरा ज्वाला-लोचन,
अपना डमरू, देव, बजाओ।
शंकर, रुद्ररूप दिखलाओ।

ताल-ताल पर अवनी-अंबर
डोलें, गिरें तारिकाएँ झर,
प्रलय मचादो, हे प्रलयंकर,
शिव, जग के वैषम्य मिटाओ।
शंकर, रुद्ररूप दिखलाओ।

[हम्मीर इसी प्रकार गा रहे हैं, पीछे से महारानी देवल आकर घंटा बजाती हैं। महाराव घूमकर देखते हैं।]

हम्मीर—आओ, मेरी भवानी ! अर्धरात्रि के अंधकार में .....

महारानी—मेरे शंकर, जिस हृदय में तुम्हारा निवास है, वहाँ क्या अंधकार रह सकता है। कहो, रुद्र के आगे प्रलय की कामना क्यों कर रहे हो ?

हम्मीर—प्रलय की कामना क्यों कर रहा हूँ ? इन करुणामय भोलानाथ को विध्वंस की ज्वाला जलाने को क्यों उत्तेजित कर रहा हूँ ? इसका उत्तर संसार के दीन-दुखी, पीड़ित प्राणों से पूछो। स्वार्थ की मदिरा पीकर मानवता आज उन्मत्त हो गई है। दूर क्यों जाती हो, हमारे ही राज्य के ग्रामों को देखो न। उन बेचारों का क्या अपराध है ? जब तक बादशाह अलाउद्दीन स्वयं रणभूमि में नहीं आया था, तब तक केवल सेना ही सेना से युद्ध करती थी। अब तो सारा देश उजाड़ा जा रहा है। संपूर्ण प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई है। इसीलिए आज मैं प्रलय का आह्वान कर रहा हूँ।

महारानी—निराशा के अंधकार के पीछे आशा का अरुणोदय नहीं देख पाते, मेरे शंकर ! प्रलय तो शिव को भी समाप्त करेगी और अशिव को भी। ऐसी अंधी आँधी न उठाओ, मेरे देवता ! जब तक हाथों में शस्त्र पकड़ने की शक्ति है क्षत्रिय-धर्म का पालन करो, लेकिन विवेक के साथ। जब तक हृदय में धड़कन बाकी है, तब तक विवेक की वंशी को बंद न होने दो। शस्त्र की शक्ति के सामने प्रेम के बल को भूल न जाओ। शंकर की जटाओं से करुणा की

धारा बही है, उसके भाल पर चंद्र अवस्थित है, जिसमें प्रेम का शीतल प्रकाश है और दया का अमृत है। सर्व-संहारक शंकर में इतनी दया है कि वह दूसरों का विष भी स्वयं पी लेता है।

हम्मीर—मैं विपत्ति का वज्र स्वयं झेलने को तैयार हूँ, किंतु, शक्ति और साधनहीन प्रजा! बोलो देवि, वह किस लिए इतना कष्ट सहे? मैं निराश भी नहीं हूँ, और न संधि या शांति का इच्छुक। मैं शीघ्र ही गढ़ से बाहर निकल कर शत्रु से लोहा लेना चाहता हूँ। अपनी हठ की सज़ा प्रजा को देने से क्या लाभ?

महारानी—आपकी दृढ़ता पर मैं कैसे संदेह कर सकती हूँ? आप इतने दृढ़ हैं जितनी रणथंभोर की चट्टानें भी नहीं। आप शत्रु से शीघ्र ही निपटारा करना चाहते हैं। प्रजा का कष्ट आपको बेचैन कर रहा है। किंतु, जिस तरह आप मेरे स्वामी हैं, उसी तरह प्रजा के भी। जिस प्रकार आप मेरे सुख का ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार प्रजा के भी। यदि मैं आपके लिए कष्ट सहने में सुख अनुभव करती हूँ तो प्रजा क्यों न करेगी? प्रजा का धर्म है राजा के लिए प्राण तक दे डालना।

हम्मीर—मुझे किसी पर शासन करने का अधिकार ही क्या है, जो ज़बरदस्ती उनका स्वामी बन बैठा हूँ······

महारानी—ज़बरदस्ती! जो ज़बरदस्ती राजा बन बैठते हैं, उनकी प्रजा उन राजाओं को असह्य बोझा समझती है। किंतु आप तो प्रजा की इच्छा के सिंहासन पर बैठे हैं। आप ने अपने ऊपर प्रजा की रक्षा और व्यवस्था का भार डाल कर अपने गले में कष्टों का भी हार

पहन लिया है। इस कष्ट-सहन में कितना आनंद है, यह मैं समझ पाती हूँ। राजपूतनियाँ अपने स्वजनों को सर्वनाश के मुँह में झोंक कर स्वयं ज्वाला की गोद में बैठ कर क्यों मुसकराती हैं? एक-दूसरे के लिए कष्ट सहना ही तो प्रेम की कसौटी है, प्रियतम! प्रजा भी अपने राजा के लिए कष्ट सहने में आनंद पाती है।

(सुरजनसिंह का प्रवेश)

सुरजन—जयशिव, महाराव!

हम्मीर—ओहो, सुरजन! तुम अचानक यहाँ कैसे आए?

सुरजन—बड़ी देर से आपकी खोज में हूँ! पहले महल में गया, वहाँ ज्ञात हुआ आप शिवालय में हैं। महाराव, क्यों अपने जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं? दिन भर युद्ध-संचालन और रात को शंकर की आराधना! राजा को क्या ज़रा भी विश्राम न लेना चाहिए?

हम्मीर—विश्राम! नहीं, सुरजन, जो ज्वाला की चिता पर सोता है, उसे नींद कहाँ? राजा को देश की, जाति की, वंश की और न जाने ऐसी ही कितनी मर्यादाएँ पालन करनी पड़ती हैं। जो राजा सुख की नींद सो सकता है, वह राजा नहीं, वसुधा का अभिशाप है। यह तो बताओ, मुझे किस लिए खोज रहे थे?

सुरजन—महाराव, कई दिनों से आपकी सेवा में कुछ निवेदन करना चाहता था। किंतु, साहस नहीं होता।

हम्मीर—कहो न?

सुरजन—महाराव, आपकी शक्ति का परिचय संसार को मिल

गया। मीर महिमाशाह इतने बहुमूल्य तो नहीं कि उनकी ख़ातिर सारा देश उजड़वा डाला जाय। आज हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित है कि देश और मीर महिमाशाह में से एक को चुन लें।

महारानी--सुरजनसिंह! आज आप कैसी भटकी-भटकी बातें करते हैं? क्या किसी क्षत्रिय ने कभी शरणागत की रक्षा से मुँह मोड़ा है। क्षत्रिय के प्राण भले ही चले जायँ, उसका क्षत्रियत्व नहीं जाना चाहिए। जिस दिन शरणागत क्षत्रिय के द्वार से लौटने लगेगा, उस दिन क्षत्रियत्व रसातल को चला जाएगा।

सुरजन--वह विदेशी है, विधर्मी है।

महारानी—कोई भी हो; शरणागत शरणागत है।

सुरजन—इसका परिणाम?

महारानी—कुछ भी हो। सम्राट पृथ्वीराज के वंशजों को परिणामों से क्या डराते हो, सुरजन सिंह! विपत्तियों से वे डरते नहीं। आज उनका साम्राज्य नष्ट हो गया, लेकिन उनका आत्म-तेज तो बाकी है। जिन्होंने क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए साम्राज्य को भी गँवा दिया, क्या वे छोटे से राज्य की परवा करेंगे।

(सन्यासिनी के वेश में चपला का प्रवेश।

चपला—जय शंकर!

महारानी—कौन चपला?

चपला—हाँ, मैं ही हूँ और साथ में एक भयानक समाचार ले कर आई हूँ।

महाराव—क्या?

चपला—शत्रु ने छाछ गढ़ पर अधिकार कर लिया।

हम्मीर—और चाचा !

चपला—राव रणधीरसिंह जी रणभूमि में शंकर के गण बन कर अवतरित हुए। हज़ारों लाशों को सिरहाने रख कर वे सदा के लिए सो गए।

हम्मीर—हाय चाचा जी, मेरे हठ ने आपकी बलि ले ली।

सुरजन—महाराव अब भी चेत जाइए। राव रणधीर सिंह जी हम सभी को पिता-तुल्य थे। उनका अभाव प्राणों को सदा सालता रहेगा। वे व्यवहार में कितने सौम्य और युद्ध में कितने भयंकर थे! वे देवता थे देवता। मीर महिमा हमारे लिए शनि बन कर आया है। वह सब कुछ लील जाएगा।

हम्मीर—ज़बान पर लगाम लगाओ, सुरजन ! शरणागत का अपमान करना क्षत्रिय की जिह्वा का धर्म नहीं है। जो विपत्ति आती है, वह किसी के कोसने से दूर नहीं हो सकती। क्षत्रिय का वज्र-हृदय सब कुछ सहन कर लेगा। महारानी, चाचाजी की मृत्यु भयंकर विभीषिका की पूर्व-सूचना है। बोलो, देवि, कर्तव्य की बलि-वेदी पर मुझे अपना शीश चढ़ाने की आज्ञा देती हो।

महारानी—आपका यश ही मेरी माँग का सिंदूर है, प्रियतम ! और इसका भी विश्वास रखो, देवता, तुम्हारी भवानी शिव-लोक में तुम्हारे बगल में बैठी होगी। अग्नि-रथ पर हम दोनों साथ चलेंगे।

चपला—लेकिन, महाराव, शायद वह सौभाग्य आपको शीघ्र न प्राप्त हो। जब तक देश का एक-एक पुरुष लड़ता हुआ जान

नहीं दे देगा तब तक महारानी को अग्नि-रथ पर नहीं बैठना पड़ेगा। मैं प्रजा में घूमती हूँ, उन्हें युद्ध के लिए उत्तेजित करती हूँ। देश ने अभी दिल्ली की सेना से आतंकित होकर साहस नहीं छोड़ा है। प्रजा महाराव के शौर्य और आत्म-त्याग पर मुग्ध है और इनके लिए सर्वस्व समर्पित करने को प्रस्तुत है। नल-हारणोगढ़ गया, छाछगढ़ भी गया, लेकिन इस विध्वंस ने लोगों को उत्तेजना की शराब पिला दी है।

महारानी—क्या सारी रात शिवालय में काटनी है ?

हम्मीर—मैं तो भूल ही गया था, चलो। (सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दृश्य तीसरा

[**स्थान**—छाछगढ़ का राज-भवन। अलाउद्दीन अपने सेना-नायकों के साथ बैठा है। अलाउद्दीन की एक तरफ़ मीर गभरू और दूसरी तरफ़ जमालखाँ है।]

अलाउद्दीन—छाछगढ़ की फ़तह ने हमारा आगे का काम आसान कर दिया है।

जमालखाँ—हमें रणथंभौर गढ़ के भीतर की फ़ौज का इतना डर नहीं है, जितना कि रणधीरसिंह के मातहत[1] गढ़ से बाहर लड़ने वाली फ़ौज से था। आये दिन हमारी रसद लूट लेना, दिल्ली से

---

१. अधीन।

आने वाली फ़ौज को रास्ते में ही रोक लेना, रात को अचानक छापे मारना। भूत की तरह वह कब कहाँ सामने आ खड़ा होगा, इसका कुछ पता ही न चलता था।

अलाउद्दीन—दर असल उस बूढ़े में कमाल की फुर्ती और बला की हिम्मत थी। जिस वक्त मैंने उसे अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ हम पर हमला करते देखा मेरा जी चाहा था कि उसके कदमों पर सर झुका दूँ।

मीर गभरू—आप भी दुश्मन की तारीफ़ करते हैं!

अलाउद्दीन—क्यों न करूँगा, मीर! मैं सेज बिछा कर सोने वाला और फ़ौज को लड़ाई के मैदान में सर कटवाने को आगे बढ़ाने वाला बादशाह नहीं हूँ। मीर साहब, लड़ाई के मैदान में एक मामूली सिपाही की हैसियत से आपका हुक्म बजाना अपना फ़र्ज़ समझता हूँ और तख्त पर बैठ कर आपको हुक्म देना भी। जो खुद तलवार चला सकता है वह दूसरे की तलवार की धार की भी तारीफ़ करना बुरा नहीं समझता। राजपूत बहादुरी में हम लोगों से कम नहीं है, यह तो मानना ही पड़ेगा।

मीर गभरू—और इंसानियत में भी वे हमसे ओछे नहीं हैं।

अलाउद्दीन—इंसानियत के माने तबदील होते रहते हैं, मीर साहब! मैंने बहुत से ऐसे काम किए हैं, जिन्हें शायद इंसानियत न कहा जावे, रणथंभ गढ़ पर हमला करना भी शायद इंसानियत के खिलाफ़ है। लेकिन तुम्हीं सोचो, इंसानियत के उसूलों पर कायम रहने से क्या सारे हिंदुस्तान को हम अपने झंडे के नीचे लाने में

कामयाब हो सकते हैं। अगर ग़ौर से सोचा जावे तो लड़ाई करना भी इंसानियत के उसूलों के ख़िलाफ़ है। यह दुनिया शुरू से ही ग़लत रास्ते पर चल पड़ी है। यहाँ इंसानियत पर कायम रहने से अपना सर भी कायम रखना मुश्किल हो जाता है, मीर साहब! हमें सिर्फ अपना मकसद देखना होता है, उस मकसद तक पहुँचने के लिए हम किन तरीकों को इस्तेमाल करते हैं, यह सोचना फ़िज़ूल है।

मीर गभरू—हम आपके नौकर हैं, आपका हुक्म मानना ही हम अपनी इंसानियत समझते हैं। लड़ाई के मैदान में तलवार चलाना हम जानते हैं। किस मकसद के लिए यह तलवार चल रही है, यह सोचना हमारा काम नहीं है।

अलाउद्दीन—आप जैसे वफ़ादार साथियों पर मुझे फ़ख्र है। क्या यह अलाउद्दीन की ताक़त थी जिसने हिंदुस्तान के कोने-कोने में फ़तह का डंका बजाया है? आप लोगों की मिली हुई हस्तियों का नाम ही दिल्ली का बादशाह है। जब तक हम एक दूसरे से मिले हुए हैं, तभी तक हमारी सलतनत कायम है। जिस दिन आप लोग अपनी आँखों से देखने लगेंगे, अपने दिमाग़ से सोचने लगेंगे, अपने दिल से जाँचने लगेंगे, उस दिन सलतनत की ताक़त टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी।

मीर गभरू—जी हाँ, आप दिमाग़ हैं और हम लोग हाथ-पैर। आप सोचें और हम काम करें, इसी में आपकी और हमारी ख़ैर है।

अलाउद्दीन—भाई गभरू, मुझे अब अफ़सोस होता है कि क्यों

गुस्से में आकर मीर महिमा को निकाल दिया। रणथंभौरगढ़ को मैं लेना तो चाहता ही था। मीर महिमा को ठहरा कर हम्मीर ने मुझे जल्दी मौक़ा दे दिया। मैंने दक्खन में जो सलतनत बढ़ाई है उसके रास्ते में राजपूतों की रियासतें ख़तरे का सबब है। इन्हें ख़त्म करना ही होगा। चित्तौड़ को ले लेने से बाक़ी रियासतें अपने आप सर झुका देंगी। चित्तौड़ वालों से लड़ने के लिए हमें यहाँ अपनी कोई जगह चाहिए। इसीलिए मैंने रणथंभौर पर चढ़ाई की है। मीर महिमा तो सिर्फ़ एक बहाना है। मुमकिन है कि रणथंभौर को ले लेने के बाद मैं तुम्हारे भाई को माफ़ भी कर दूँ।

मीर गभरू—मुझसे यह कहने की ज़रूरत नहीं है। जहाँ तक दिल्ली की सलतनत को फैलाने और महफ़ूज़ रखने का सवाल है गभरू की तलवार अपनी भी गरदन पर चलने को तैयार है। सलतनत की शान के सामने भाई की मुहब्बत की कोई हस्ती नहीं है, बादशाह सलामत! यह ठीक है कि लड़ाई के मैदान में जब मैं अपने भाई को सामने देखता हूँ तो हाथ की तलवार थम जाती है। जी करता है भाई को गले लगा लूँ। लेकिन थोड़ी ही देर में मैं होश में आ जाता हूँ। मैं समझने लगता हूँ कि मेरा न कोई भाई है, न कोई मेरी माँ थी, न कोई मेरा बाप था। सिपाही का दुनिया में सिवा उसके फ़र्ज़ के और कोई नहीं है। वह समझता है कि उसके सामने जो लोग खड़े हैं उनके भी न माँ है, न बाप, न भाई, न बहन, न औरत, न लड़का, न लड़की। जो सिपाही है, उसके दिल की जगह पत्थर होता है।

अलाउद्दीन—मैं तुम्हारे दर्द को समझता हूँ, मीर साहब! आप अपने आप को धोखा देना चाहते हैं। लेकिन भाई, मैं सब कुछ साफ़ देख रहा हूँ । तुम्हारे दिल की धड़कन मेरे दिल में भी बज रही है।

(दरबान का प्रवेश)

दरबान—(कोर्निश करके) एक राजपूत सरदार मिलना चाहता है।

अलाउद्दीन—यहीं भेज दो।

(सैनिक का कोर्निश करके प्रस्थान)

मीर गभरू—कौन राजपूत सरदार आया है ?

अलाउद्दीन—आप अब जा सकते हैं।

(कोर्निश करके सेना-नायकों का प्रस्थान)

अलाउद्दीन—क्या महाराव हम्मीरसिंह सुलह करने को तैयार हो गए हैं ? राजपूत सरदार के आने का क्या मकसद हो सकता है ?

(सुरजनसिंह का प्रवेश और अलाउद्दीन
को अभिवादन करना)

अलाउद्दीन—आइए, तशरीफ़ रखिए! आप कहाँ से आ रहे हैं?

सुरजनसिंह—रणथंभौर गढ़ से ?

अलाउद्दीन—आपका इस्म शरीफ़[1] ?

सुरजन—जी, मुझे सुरजनसिंह कहते हैं। मैं रणथंभौर गढ़ का कोषाध्यक्ष हूँ !

---

१. शुभ नाम ।

अलाउद्दीन—कहिए, क्या महाराव ने सुलह करने के लिए आपको भेजा है ?

सुरजन—नहीं, संधि करना चौहानों ने नहीं सीखा है।

अलाउद्दीन—मैं आपके महाराव की क़द्र करता हूँ। वह मेरे दोस्त बन सकें तो मैं अपनी खुश-किस्मती समझूँगा, और अगर न बनें तो रणथंभौर गढ़ का वही हाल होगा जो छाछगढ़ का हुआ है।

सुरजन—यह तो हम जानते हैं। इसीलिए आपसे कुछ निवेदन करने आया हूँ। महाराव तो चौहानी के नशे में हमारे देश को उजाड़ने पर तुले हैं।

अलाउद्दीन—आप लोग कोशिश करें तो यह बरबादी रुक सकती है।

सुरजन—हज़ारों स्त्री-बच्चे बेघरबार होकर सड़कों पर मारे-मारे फिर रहे हैं, मुझ से तो यह नहीं देखा जाता। मेरे लिए राव से बढ़कर रैयत है। इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ।

अलाउद्दीन—आप जैसे नेक-तबियत, रहम-दिल राजा हों तो क्या बात है! अलाउद्दीन सब कुछ कर सकता है, सुरजनसिंह जी! आप हमारा साथ दें तो मैं आपके मुल्क को फिर हरा-भरा कर दे सकता हूँ।

सुरजन—लोग मेरे नाम पर थूकेंगे। मैं तो आप से केवल यह निवेदन करने आया था, कि यह युद्ध आप समाप्त कर दीजिए। अभी कई वर्ष तक रणथंभौर गढ़ में अपनी रक्षा करने की शक्ति है, इसलिए व्यर्थ ही इतना रक्त-पात क्यों करते हैं ? मेरे निवेदन पर

ध्यान देने के बजाय आप इतना बड़ा लोभ मेरे सामने रख रहे हैं। महाराव के साथ छल ! ओह, दुनिया मुझे पिशाच कहेगी।

अलाउद्दीन—पिशाच कहेगी ! वाह ठाकुर साहब, आप भी कितने भोले हैं ! जिसके पास शक्ति है उससे कोई कुछ नहीं कह सकता। आज आप मेरे महमान हैं। भीतर चलिए। रात भर सोचिए। सुबह अपना फैसला बताइए।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[**स्थान**—रणथंभौरगढ़ की राज-वाटिका। एक फव्वारे के पास स्फटिक आसन पर महाराव हम्मीरसिंह बैठे हैं।]

हम्मीर—संपूर्ण जीवन विस्तृत रेगिस्तान बन गया है। विश्राम के लिए एक क्षण भी उपलब्ध नहीं है। आज क़िले की यह दीवार टूट गई है। आज शत्रु ने उस तरफ़ आक्रमण किया है, वहाँ तोपें पहुँचाओ। सोते-जागते केवल युद्ध के ही स्वप्न। कितना सुन्दर है यह जीवन। संघर्ष का ही नाम तो जीवन है। संसार की आँखों में ऐसा जीवन एक यंत्रणा है, किन्तु, मुझे तो इस यंत्रणा में भी अनिर्वचनीय सुख मिलता है। हरे-भरे शस्य-श्यामल प्रदेशों में आनंद अनुभव करने वाले तो सभी हैं, लेकिन रेगिस्तान की तपन में तृप्ति पाने वाले राजस्थानी ही हैं।

(मीर महिमा का प्रवेश)

मीर—कहिए महाराव, बगीचे की बहार लूट रहे हैं ?

हम्मीर—बहार! हाँ भाई! ज़िंदगी की बहार लूट रहा हूँ। इन फूलों को देखो, जिनका सिर्फ एक दिन का जीवन है, किस अभिमान के साथ मुसकरा रहे हैं! भाई, मरना तो है ही, क्यों न जब तक जिया जाय हँस-हँस कर जिया जाय।

मीर—मैंने आपकी ज़िंदगी के बगीचे में वसंत की बयार की जगह पतझड़ की लू चला दी है।

हम्मीर—ऐसा क्यों कहते हो महिमा! मुझे अपने आदर्श की रक्षा के लिए कष्ट सहने में कितना आनंद मिलता है, इसे क्या आप नहीं जान पाते? मैं तो जो कुछ कर रहा हूँ। वह परोपकार के लिए नहीं, आत्म-सुख के लिए कर रहा हूँ।

मीर—आपने मेरी ख़ातिर अपने बूढ़े चाचा साहब को भी कुरबान कर दिया, दोस्ती का ऐसा नमूना क्या दुनिया की तवारीख़ में और कहीं मिलता है?

हम्मीर—मनुष्यता को इतना कंगाल न समझो, मीर साहब! राजा-महाराजाओं का इतिहास तो लोग लिख लेते हैं, लेकिन क्या साधारण लोगों में मनुष्यता के उच्च उदाहरण नहीं मिलते? जो लोग हमारे इशारे पर प्राण समर्पित करते हैं या जो दीपक की भाँति मुसीबतों की आँच में कण-कण जल रहे हैं उनमें कितने ही ऐसे हैं जिनके सामने महाराव हम्मीर अत्यंत क्षुद्र है।

मीर महिमा—यह मैं मानता हूँ, कि इंसानियत ग़रीबों में भी पाई जाती है और हैवानियत तो खास तौर से अमीरों की दौलत है। लालच इंसान को हैवान बनाता है।

(सुरजनसिंह का प्रवेश)

हम्मीर—आओ भाई सुरजनसिंह !

सुरजन—एक अत्यंत गंभीर परिस्थिति पर विचार करना है महाराव !

हम्मीर—अत्यंत गंभीर ! आपकी समस्याओं को मैं जानता हूँ। जिस दिन से मीर साहब आए हैं उसी दिन से आपकी समस्या गंभीर हो गई है। लेकिन आज मैं किसी गंभीर समस्या पर विचार करने को तैयार नहीं हूँ। देखते नहीं हो, अभी तो सूर्य निकला ही है और आप गंभीर समस्या लेकर आगए। वे फूल आपकी हँसी उड़ा रहे हैं। परिंदे फुदक-फुदक कर आते हैं, व्यंग-भरी दृष्टि से देखकर उड़ जाते हैं। इस वक्त तुम गंभीर समस्याएँ लेकर आए हो !

सुरजन—आज तो महाराव कवि हुए जा रहे हैं। जीवन के सत्य को पर्दे के पीछे छिपाए रखने से उसकी गंभीरता में कमी तो आ ही नहीं सकती। उपेक्षा उसे गंभीर से भयंकर बना देती है।

हम्मीर—देखो, सुरजन ! रणथंभौर का महाराव आँखें रखता है। उसे चढ़ता हुआ सूर्य भी नज़र आता है और उतरता हुआ भी। युद्ध के मैदान में भी उसके हृदय में आनंद की वीणा बजती है और आनंदोत्सव में भी उसके प्राणों में युद्ध का भैरव राग बजता है। वह वसंत में छिपे हुए पतझड़ के विनाश-बीजों को देखता है और पतझड़ की शुष्कता में वसंत के विकास को भी। क्या गंभीर मुँह बनाकर बैठने से ही यह जाना जा सकता है कि समस्या गंभीर है ?

सुरजन—फिर भी महाराव आप तो केवल युद्ध-क्षेत्र के सैनिकों की संख्या याद रखते हैं। उन सोने-चाँदी के टुकड़ों की तरफ़ तो मुझे ही देखना पड़ता है जिनके ज़ोर पर ये सैनिक समर-क्षेत्र में खड़े होते हैं। पेट की ज्वाला जीवन के दिन छीन लेती है। युद्ध ने रणथंभौरगढ़ के खज़ाने की कितनी सीढ़ियाँ ख़ाली कर दी हैं यह भी आपको पता है ?

हम्मीर—रणथंभौर का ख़जाना एक-एक सीढ़ी नीचे उतर रहा होगा, मेरी ज़िंदगी के दिन भी दिन में कई महीने पार कर जाते हैं। मैं अन्दाज़ तो लगा पाता हूँ, सुरजन !

सुरजन—लेकिन स्थिति अंदाज़ से कहीं ज़्यादा ख़राब है। हम दस दिन भी युद्ध नहीं कर सकते।

हम्मीर—सच !

सुरजन—हाथ कंगन को आरसी क्या ? महाराज, स्वयं चल कर देख सकते हैं।

मीर महिमा—महाराव, बहुत हो चुका। जिस शख्स ने मेरी ख़ातिर अपनी सारी रियासत बरबाद करा दी, अपने चाचा को मौत के मुँह में झोंक दिया और जो अपनी भी जान पर खेल रहा है, मेरा भी उसके लिए कुछ फ़र्ज़ है। मैं कल ही अलाउद्दीन के पास जाऊँगा। मेरे उसके पास चले जाने से यह जंग रुक जाएगा, मेरा एक दोस्त बरबादी से बच जाएगा। आपका अहसान मैं ज़िंदगी भर नहीं भूलूँगा, महाराव ! आपने मुझे सगे भाई से बढ़कर माना है।

हम्मीर—क्षत्रिय शरणागत को देवता मानता है। आपको मौत के पंजे में जाने दूँगा तो मेरे महादेव मुझ से ही नहीं, मेरे वंश से भी रूठ जावेंगे । मैं अपने ऊपर महादेव का अभिशाप नहीं लेना चाहता। हम्मीर जब तक जीवित है मीर महिमा की ज़िंदगी पर आँच नहीं आ सकती ।

सुरजन--लेकिन आप युद्ध कब तक जारी रख सकेंगे ?

हम्मीर--अब बहुत जल्दी युद्ध का निपटारा होगा ।

सुरजन--क्या संधि कर लेंगे ?

हम्मीर—संधि ! संधि की बात सोचना भी पाप है। समझौता क्षत्रिय के जीवन के पास नहीं फटक सकता । मित्र या शत्रु, जीवन या मरण, इस पार या उस पार ! बीच का रास्ता हम लोग नहीं पकड़ते । निपटारा संधि के द्वारा नहीं, युद्ध के द्वारा ही होगा ।

सुरजन—किंतु युद्ध-संचालन के लिए ....

हमीर—धन चाहिए ! अब हमें धन की आवश्यकता नहीं रही । मेरे सैनिक मेरे इशारे पर प्रत्येक परिस्थिति में कार्य करेंगे, प्राणों पर खेलेंगे। युद्ध होगा, डट कर युद्ध होगा ।

सुरजन—सत्य भावुकता से बहुत दूर रहता है ।

हम्मीर—हम्मीर का सत्य संसार से पृथक् है, सुरजन ! दस दिन के योग्य तो रसद हमारे पास है न ?

सुरजन—जी, इतनी तो हो जाएगी ।

हम्मीर—अब रक्षणात्मक युद्ध न हो सकेगा। गढ़ में घिरे रहने

से हम अपने देश से कट गए हैं । हमें गढ़ से बाहर भी युद्ध करना पड़ेगा ।

मीर महिमा—यह तो मैं भी महसूस कर रहा था कि जब से चाचा साहब शहीद हुए हमारी ताक़त आधी रह गई । बाहर भी हमारी फ़ौज लड़ती, दुश्मन की रसद लूटती, उसका लड़ाई का सामान छीनती, और हमले भी करती तो क्या मजाल थी कि इतने दिन ये लोग यहाँ ठहर पाते । मेरे दिल में न जाने कितने दिन से यह .ख्वाहिश है कि मुझे एक हज़ार सिपाही मिल जावें तो मैं बाहर रहकर दुश्मन से लड़ूँ । बोलिए महाराव, चाचा साहब की जगह मुझे मिल सकेगी ?

हम्मीर—एक वादा करो तो; कि आप अलाउद्दीन को आत्म-समर्पण नहीं करोगे । मेरा इससे बड़ा अपमान नहीं हो सकता कि शत्रु आपको प्राप्त कर ले । चौहानों की नाक न कटवाना, मीर साहब !

मीर महिमा—जिस तरह मेरी इज्ज़त को आप अपनी इज्ज़त समझते हैं, उसी तरह मैं भी आपकी इज्ज़त को अपनी समझता हूँ । मेरे भी हाथ देखिए, महाराव ! पठान राजपूतों से कम बहादुर नहीं हैं, और वे बेईमान भी नहीं होते ।

(नेपथ्य में तुरही बजती है)

हम्मीर—चलो, तुरही बज रही है ।　　　　(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[**स्थान**—रणथंभौर के निकट ग्राम की एक गली। कुछ ग्रामीण स्त्री, पुरुष, बच्चे और बच्चियाँ अपने सर पर गठरियाँ लादे, हाथ में लाठी लिये जा रहे हैं।]

एक बालिका—(गाती है)

चल अभागे छोड़कर घर,
झोंपड़ो की बात क्या है,
धूल होते हैं महल भी।
दिल ग़रीबों के भला क्या,
हिल उठे थर-थर अचल भी।
चल, अपरिचित राह पर चल,
मोह परिचित का भुला कर।
चल अभागे छोड़ कर घर।
स्नेह से पाला जिन्होंने,
स्नेह से जिनको सम्हाला,
स्नेह का दीपक जिन्होंने—
था हृदय के बीच बाला!
खा गया उनको अँधेरा,
झर रहे हैं अश्रु झर-झर।
चल अभागे छोड़ कर घर!

थे खिले जिस वाटिका में
फूल, उसमें रह न पाए!
आगई आँधी अचानक,
फूल-पत्ते सब उड़ाए!
देखकर बरबाद क्यारी,
हँस रहा है आज अंबर।
चल अभागे छोड़कर घर।

(बालिका का गाना रुकता है। नेपथ्य में घोड़ों की टापों की आवाज़ आती है।)

एक ग्रामीण—सुनते हो, यह तो सेना के आने का कोलाहल है।

दूसरा ग्रामीण—हाँ, भाई, शायद इस बार इस गाँव की वारी है।

तीसरा ग्रामीण—सर पर पैर रख कर भागो! जान प्यारी है तो सर की गठरी फेंको और नौ दो ग्यारह हो जाओ!

पहला ग्रामीण—लेकिन, ये बच्चे! इन्हें छोड़कर कहाँ जाएँ? ये तो जल्दी भाग नहीं सकते। और ये स्त्रियाँ; इनकी इज्ज़त......

दूसरा ग्रामीण—हाँ, इनकी इज्ज़त........।

एक स्त्री—क्या भैया, सिपाही इतने निष्ठुर हैं कि अबोध बालकों की भी हत्या कर देते हैं? वे स्त्रियों की इज्ज़त का भी ख़याल नहीं करते? (एक घायल सैनिक को उठाए हुए दो व्यक्तियों का प्रवेश। घायल का एक हाथ और एक पैर कटा हुआ है। चेहरे पर बड़ा सा घाव है। घावों से खून बह रहा है। चेहरा विकृत हो गया

है । घायल को एक तरफ़ से लाया जाता है, दूसरी तरफ़ से ले जाया जाता है ।)

एक ग्रामीण--पास में ही कहीं युद्ध हो रहा है ।

एक स्त्री—घायल सिपाही को देख कर मेरी तो रूह काँप उठी । आदमी हिंसक पशुओं से भी अधिक दुष्ट और निष्ठुर है । मनुष्य को मनुष्य इस तरह मारता है !

दूसरा ग्रामीण—तुम हो ब्राह्मण की बेटी । इसीलिए घायल को देख कर काँप उठीं । अरे कभी जाकर युद्धभूमि को देखो, तो तुम्हारे प्राण ही निकल जाएँ । लाशों का ढेर लगा होता है, जिन पर गिद्ध बैठे दावत उड़ाते हैं । कहीं सर पड़ा होता है, कहीं धड़ होता है । किसी का गला तलवार से आधा काटा होता है, किसी के पेट की आँतें निकली होती हैं, किसी का सर बीच से चिरा होता है । युद्ध ऐसी ही भयंकर वस्तु है , बहन !

स्त्री—मनुष्य राक्षस हो गया है ।

दूसरा ग्रामीण—हाँ बहन, राक्षस हो गया है । मनुष्य के स्वार्थ ने दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा पैदा की । जैसे बैलों को हम जुए में कसते हैं, उसी तरह बहुत से मनुष्य ग़रीब लोगों को दास बना कर उनसे तरह-तरह के काम लेते हैं । स्वयं मौज उड़ाते हैं और उनसे काम कराते हैं । हम अपने बैलों को पेट भर घास दाना तो देते हैं, अपनी छान में उन्हें बाँधते तो हैं, लेकिन मनुष्य तो अपने दासों को न पेट भर खाना देता है, न रहने को घर । जिन्हें हम राजा, रईस, सेठ, साहूकार कहते हैं, उनका यही चित्र है, बहन !

तीसरा—राजा-रईसों के चित्र तो पीछे खींचना, पहले यह सोचो किधर भागोगे।

पहला ग्रामीण—किस तरफ़ जाने से फ़ौज का सामना न होगा?

(चपला का सन्यासिनी के वेश में प्रवेश। उसके पीछे और भी स्त्रियाँ हैं जो हाथ में तलवारें लिये हुए हैं।)

चपला—सर पर गठरी लादे कहाँ जा रहे हो?

एक ग्रामीण—जहाँ सींग समावें।

चपला—या जहाँ मौत न आवे। ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ यमराज नहीं पहुँच सकते?

दूसरा ग्रामीण—जब तक संभव हो यमराज को धोखा देने का प्रयत्न तो करना चाहिए।

चपला—धिक्कार है तुम्हें। अपनी मातृभूमि पर शत्रु को तांडव करने को छोड़ कर तुम भागे जाते हो। अपनी मातृ-भूमि को छोड़ते हुए क्या तुम्हें दुःख नहीं होता? जिसके प्राणों का रस पीकर और जिसका अन्न खाकर तुम इतने बड़े हुए, पुष्ट बने, विपत्ति के समय तुम उसे छोड़ जाओगे? जहाँ जाओगे वहाँ तुम्हें जन्मभूमि की याद नहीं आवेगी? क्या तुम्हारी आत्मा तुम्हें धिक्कारेगी नहीं?

स्त्री—बहन, कौन अपनी जन्म-भूमि को छोड़ते समय व्याकुल नहीं होता? हमें हमारा घर-बार, पशु-पक्षी, वृक्ष, खेत, कुँए, नदी और सरोवर सभी पुकार रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों सब हमारे भाई-बंधु हैं। बहन, जी करता है, भागने के बजाय यहीं जान दे दूँ!

चपला—शाबास बहन, प्रेम ही तो निर्जीवों में जान डाल देता है। तुम पुरुषों को जन्मभूमि के लिए जान देने को उत्तेजित करो।

पहला ग्रामीण—जो क्षत्रिय हैं वे लड़ रहे हैं। हमारा कार्य तो लड़ना नहीं है। हम सदा से खेती करते आए हैं, लेकिन युद्ध के काल में खेती हो नहीं सकती, इसलिए भी हमें जन्मभूमि को छोड़ना पड़ेगा। पेट की ज्वाला को किसी तरह परिश्रम कर के शांत करना होगा।

चपला—देश क्या केवल क्षत्रियों का है ? जन्मभूमि पर प्राण देने का अधिकार प्रत्येक देशवासी को है, भाई ! देश की शत्रु से रक्षा करने के लिए प्रत्येक जाति के पुरुषों को आगे बढ़ना होगा। जो अपने जीवन का मोह न करे वही तो क्षत्रिय है। केवल क्षत्रिय के घर जन्म लेने ही से कोई क्षत्रिय नहीं हो जाता। ऐसे भी क्षत्रिय हैं, भाई, जो स्वार्थ के कारण शत्रु से मिल गए हैं। उन्हें क्या हम क्षत्रिय कह सकते हैं। क्षत्रिय तो क्या, हम उन्हें मनुष्य भी नहीं कह सकते। जो मृत्यु से डर कर जन्म-भूमि को शत्रु के पैरों तले रौंदी जाने को छोड़ देते हैं, क्या वे जीवित हैं। वे तो चलती-फिरता लाशें हैं। तुम क्या ऐसी ही लाशें बनना चाहते हो ?

एक ग्रामीण—हम प्रस्तुत हैं, देवि ! लेकिन ये स्त्रियाँ और ये बच्चे !

चपला—इन्हें मुझे सौंप दो। मैं इनकी व्यवस्था करूँगी। आप लोग तलवारें लें। (साथ की महिलाओं से) दो इन्हें तलवारें।

(ग्रामीण तलवारें पकड़ते हैं)

चपला—गाओ, बहनो, देश-गीत ! (सब गाते हैं)

कर रही आह्वान जननी,
रक्त-रंजित ओढ़ साड़ी।

जिन सपूतों को पिलाया
दूध छाती से लगाकर,
जिन सपूतों को खिलाया
गोद में अपनी उठाकर,
जिन सपूतों को सुलाया
लोरियाँ सस्नेह गाकर,
वे दिखावें हाथ अपने
युद्ध में जाकर खिलाड़ी।
कर रही आह्वान जननी
रक्त-रंजित ओढ़ साड़ी।

देश के आकाश में हैं
मेघ काले आज छाए।
झड़ लगी है संकटों की,
वज्र टूटे, गढ़ गिराए,
दुःख के दिन में जननि को
छोड़ कर जो मूढ़ जाए,
वह चिता अपनी सजाता
हाथ से अपने अनाड़ी।
कर रही आह्वान जननी
रक्त-रंजित ओढ़ साड़ी।

है अमर आत्मा हमारी
क्यों हृदय भयभीत होवे ?
वह अमर पद पा सकेगा
युद्ध में जो शीश खोवे।
जान पाएँ शक्ति अपनी
क्यों न अपनो जीत होवे ?

हम बढ़े जावें निरंतर
पार करते कष्ट-खाड़ी
कर रही आह्वान जननी
रक्त-रंजित ओढ़ साड़ी।

(गाते-गाते सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—रणथंभौर का राज-महल। महाराव हम्मीरसिंह वीर वेश में खड़े हैं।]

हम्मीर—चौहानों की तलवार का तेज क्षीण नहीं हुआ। लेकिन, ख़ज़ाना खाली हो गया है, रसद समाप्त हो गई है। वीरत्व का नहीं, साधन का अभाव भारत के प्रसिद्धतम क्षत्रिय-कुल की आहुति लेकर मानेगा। लेकिन समाप्त होने के पहले अग्नि-पुत्र चकाचौंध से दिशाएँ प्रकाशित कर देंगे।

(मीर महिमा का सैनिक वेश में प्रवेश)

मीर महिमा—महाराव, आज मैं आप से आख़िरी बिदा लेने आया हूँ। इतने दिन आपने मुझे अपनी मुहब्बत और मेहरबानी के साया में रखा है उसकी याद मेरी रूह में समा गई है। इंसान कौन है, यह तो मैं आपको देख कर ही जान पाया हूँ। आज आपने मुझे अपनी फ़ौज का सिपहसालार बनाकर मुझ पर कितना यकीन किया है! आज मैं अपनी ज़िंदगी का सबसे बड़ा काम करने जा रहा हूँ। आज की लड़ाई मेरी क़िस्मत का .फैसला कर देगी।

हम्मीर—साथ ही रणथंभौर की किस्मत का भी। इतने दिन राजपूतों के साथ रहकर आपने राजपूतों के स्वभाव को जान लिया है। आप दिल्ली की फ़ौज की युद्ध-प्रणाली भी जानते हैं। आप से अच्छा सेनापति रणथंभौर को नहीं मिल सकता। चाचा साहब जो कार्य न कर सके वह आप कर दिखाएँगे। आप को अवश्य विजय प्राप्त होगी।

(महारानी देवल और राजकुमारी चंद्रकला का प्रवेश। चंद्रकला के हाथ में थाली है, जिसमें टीका करने का सामान है।)

महारानी—मेरा भी आशीर्वाद है कि मेरा भाई आज अपना नाम अमर कर दे। अपने साथ रणथंभौर की सेना का भी नाम गौरव के उच्च शिखर पर पहुँचा दे।

(जय और विजय वीर-वेश में प्रवेश। वे आकर महारानी और महाराव के पैर छूते हैं।)

महारानी—यशस्वी हो, बेटा!

हम्मीर—चौहानों के रक्त का गौरव बढ़ाओ, कुमार!

मीरमहिमा, आज दोनों कुमार आपकी अधीनता में संग्राम करेंगे।

मीर महिमा—लेकिन, इन जिगर के टुकड़ों को उस ख़तरनाक लड़ाई में भेजने की क्या ज़रूरत है ?

हम्मीर—अब आवश्यकता आ पड़ी है कि हम अपनी मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु का भी मोह न करें। जन्मभूमि आत्म-त्याग और बलिदान माँगती है।

महारानी—अतिथि हमारा देवता है। अतिथि के लिए हम अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु देने में संकोच नहीं करतीं।

मीर महिमा—(गद्गद् होकर) बहन, आप जिस ऊँचाई से बोल रही हैं, वहाँ तक क्या दुनिया वाले पहुँच सकते हैं। अपने जिगर के टुकड़े, अपनी आँखों के तारे, अपने मुल्क की उम्मीदों को इस नाचीज़ के लिए ख़तरे में न डालिए। मैं हाथ जोड़ कर आपसे भीख माँगता हूँ। मेरे भी दिल है ? महारानी ! मैं माँ की मुहब्बत को जानता हूँ। आपके दिल में जो तूफ़ान उठ रहा है, उसे भी समझता हूँ। आप बहुत जब्र[1] कर रही हैं, अपने ऊपर, मेरे ऊपर और रणथंभौर के ऊपर।

महारानी—देखो, महिमा शाह, यह ठीक है कि मैं माँ हूँ, यह भी ठीक है कि युद्ध-भूमि में जीवन और मरण के किनारे मिल जाते हैं। फिर भी शायद आप क्षत्राणी के हृदय को नहीं समझ सके। जिस दिन क्षत्राणी का पुत्र युद्ध-भूमि को प्रस्थान करता है, उसका मातृत्व उसी दिन धन्य होता है।

१. अत्याचार।

जय—मीर साहब, आप हमारी चिंता न करें। जब जन्मभूमि के मान का प्रश्न उपस्थित है, उस समय प्रत्येक युवक का कर्तव्य है कि वह अपना बलिदान चढ़ाने को प्रस्तुत हो जाय।

विजय—माँ के मंदिर में राज-पुत्र और साधारण सैनिक के मस्तकों का मूल्य बराबर है, मामा साहब! जब आप सहस्रों सैनिकों के शीशों के लिए चिंतित नहीं हैं तो इन दो खोपड़ियों का इतना मोह क्यों है? और हम निरे बच्चे नहीं हैं। हम अपनी कीमत स्वयं समझते हैं। मातृभूमि के रज-कण महाराव के पुत्रों से अधिक मूल्यवान हैं, मामा साहब!

हम्मीर—आज मेरे आनंद की सीमा नहीं है। आज मेरे प्राणों के अंश अपना शौर्य दिखाने जा रहे हैं। आज सम्राट् पृथ्वीराज भी स्वर्ग से अपने वंशजों का तेज देखकर फूले न समावेंगे। मेरे पुत्रो, मुझे पूरा विश्वास है कि तुम अपने तेज की चकाचौंध से शत्रु की आँखों को चौंधिया दोगे। रक्त की गंगा में स्नान करके आज अग्नि-पुत्रों की आत्मा तृप्त होगी।

जय—पिताजी, आपने हमारे लिए देश की मान-रक्षा में भाग लेने का जो सौभाग्य उपस्थित किया, हमें अपना पौरुष दिखाने की जो आज्ञा दी, उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। आपके यश की आज भारत के कोने-कोने में चर्चा है। हमारे हाथों में भी आपही की स्फूर्ति है। हमारी आँखों में आपकी ही बिजली है। हमारे प्राणों में आपका ही जोश है। हमें विश्वास है कि हम परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे।

राजकुमारी—हाँ, भैया, तुम्हारा नाम ही जय-विजय है।

पराजय तुम्हारे पास नहीं आ सकती । तुम ध्वजा फहराते हुए जाओ और ध्वजा फहराते हुए लौटो । राजकुमारों को लड़ते हुए देखकर हमारी सेना में जोश का समुद्र उमड़ पड़ेगा। मेरी भी इच्छा होती है कि मुझे भी युद्ध-भूमि में जाने का अवसर मिले !

विजय—जिस दिन हमारा खून पानी हो जाएगा, बहन, उस दिन तुम्हें शस्त्र पकड़ने की आवश्यकता पड़ेगी।

राजकुमारी—किंतु हमें शस्त्र-संचालन सिखाया क्यों जाता है ?

हम्मीर—आत्म-रक्षा के लिए। बेटी, क्षत्रिय मान को प्राणों से प्रिय मानता है। देश का मान हमें जितना प्रिय है, उतना ही नारी जाति का भी। जब तक एक भी क्षत्रिय जीवित है, उसकी आँखों के सामने किसी नारी का अपमान नहीं हो सकता। लेकिन कभी ऐसे क्षण भी आ सकते हैं जब नारी को आत्म-निर्भर होना पड़ता है । उस क्षण के लिए ही तुम्हें शस्त्र-संचालन की शिक्षा दी जाती है, बेटी !

महारानी—हाँ, बेटी, आज तक किसी नारी के कारण क्षत्रियों को आँखें नीची करने का अवसर नहीं मिला। जब शस्त्र बेकार हो जाते हैं ज्वाला हमें चिर पवित्र कर देती है। लपटों की साड़ी पहन कर हम अमरत्व के लोक को प्रस्थान कर देती हैं।

राजकुमारी—आओ, रण-यात्रा के पहले बहन को टीका करके आशीर्वाद दे लेने दो।

(दोनों राजकुमार आगे बढ़ते हैं। राजकुमारी टीका करती है।)

राजकुमारी—भैया, संसार के आकाश में तुम्हारे तेज का सूर्य युग-युग तक चमके।

जय-विजय—तुम्हारा आशीर्वाद सत्य हो।

महारानी—आइए, मीर साहब, आपको भी टीका लगा कर रण-यात्रा को भेजूँ।

(मीर-महिमा आगे बढ़ता है)

महारानी—(टीका लगाती हुई) मेरे भाई, तुम पर मनुष्यता को युग-युग तक अभिमान रहे।

मीर महिमा—(महारानी के चरणों में गिर कर) मेरे दिल की यही ख़्वाहिश है कि जिस मुल्क में ऐसी हस्तियाँ पैदा होती हैं, उसकी ख़ाक में मैं भी मिल जाऊँ। यही तमन्ना[1] लेकर मैं आज जा रहा हूँ।

(पटाक्षेप)

---

१ कामना।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[रणथंभौरगढ़ के मुख्य द्वार पर मीर महिमा, जय-विजय तथा उनके पीछे अन्य राजपूत सैनिक रण-सज्जा से सज्जित खड़े हैं।]

जय—मामा जी, दस मास के बाद आज रणथंभौर गढ़ का फाटक खुला है। शत्रु को प्रवेश करने की चुनौती देते हुए हम यहाँ खड़े हैं।

विजय—किसकी शक्ति है कि वह हमारी तलवार के वार से बचकर गढ़ के भीतर घुस सके।

मीर महिमा—दर असल, अब असली लड़ाई शुरू हुई है। हमारे सामने जीने-मरने का सवाल है। राजकुमार, आज आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा, आप सिर्फ देखते रहें। मैं इस फाटक पर पहाड़ की तरह डटा हूँ। आप मेरे पीछे रहकर फ़ौज को हिस्मत देते रहें।

जय—हम तीनों ही द्वार पर दृढ़ मीनारों की भाँति खड़े हैं। हमारी मोर्चेबंदी इतनी दृढ़ है कि शत्रु की सेना फाटक खुला पा कर भी भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। जिस तरह पतंगे दीप-

शिखा पर टूट टूट कर जान गँवाते हैं, वे भी बार-बार फाटक की तरफ़ बढ़ कर मौत के मुँह में सो जाएँगे।

(नेपथ्य में तुरही की आवाज़)

मीर महिमा—महाराव का युद्ध का नक्शा ला-जवाब होता है, इसमें शक नहीं। हम तो सिर्फ लड़ना जानते हैं। लड़ाई का नक्शा बनाना तो महाराव का ही काम है। जितना मज़बूत जिस्म उन्हें मिला है उससे कहीं तेज़ दिमाग़ भी। जिस अलाउद्दीन की फ़ौज की आँधी के सामने बड़े-बड़े राजा-महाराजा तिनकों की तरह उड़ गए, उसका दस महीने तक मुकाबला करना क्या आसान काम है ?

(नेपथ्य में तुरही की आवाज़ स्पष्ट होती है।)

लो दुश्मन की फ़ौज फाटक को खुला देखकर अंदर घुसने के लालच को न रोक सकी। वह बढ़ी चली आ रही है।

विजय—हमें बाण-वर्षा प्रारंभ करनी चाहिए।

जय—और क़िले पर से अग्नि-वर्षा भी।

मीर महिमा—अभी नहीं, इन्हें और आगे बढ़ने दो। देखा राजकुमार, वह मेरा भाई सबसे आगे हाथी की तरह झूमता चला आ रहा है। एक माँ की गोद में पले हुए दो भाई लड़ाई के मैदान में आज आमने-सामने खड़े हैं। क़िस्मत के करिश्मे हैं ये ! मैं चाहता हूँ लड़ने के पहले एक बार भाई से गले मिल लूँ। मैं पहले ही सोच कर आया था कि आज भाई से मुलाकात होगी। उस के लिए एक ख़त भी लिख लाया था। तीर में बाँध कर अभी, उसके पास पहुँचाता हूँ।

(तीर में बाँध कर चलाता है ।)

जय—क्या खूब ! गज़ब का निशाना है । तीर ठीक मीर गभरू साहब के पैरों में जाकर गिरा है ।

मीर महिमा—वह देखो, भाई ने अपनी फ़ौज को रोक दिया है । वह अकेला आगे आ रहा है ।

विजय—उन्हें शक नहीं हुआ कि हम धोखा देंगे ।

मीर महिमा—वह जानता है कि महिमा जिस तरफ़ खड़ा होगा ईमानदारी से खड़ा होगा । छिपकर बेईमानी से वार नहीं करेगा । फिर भाई का यकीन तो उसे करना ही चाहिए ।

(मीर गभरू का प्रवेश । मीरमहिमा दौड़कर मीर गभरू से गले मिलता है ।)

जय—कैसा स्वर्गीय है यह दृश्य ! प्रेम की दो धाराएँ एक हो रही हैं । दोनों की आँखों से अश्रु प्रवाहित हैं । इन आँसुओं से वसुधा पवित्र हो गई । रणथंभौर की चिर अतृप्त भूमि आज इस खारे पानी से तृप्त हो गई ।

मीर गभरू—भाई !

मीर महिमा—भाई !

(आँसू पोंछकर अलग होते हैं)

विजय—अश्रुओं ने वाणी पर पूर्ण विराम लगा दिया है ।

मीर गभरू—आज हमारे माँ-बाप अपने बेटों को ईमान के लिए एक दूसरे की जान का गाहक देख कर भी खुश हो रहे होंगे ।

मीर महिमा—भाई, मुझे माफ़ करो।

मीर गभरू—मुझे भी माफ़ करो, भाई! मुझे इस बात की खुशी है कि तुम अपने ईमान के सच्चे हो।

मीर महिमा—क़ौम का दुश्मन.........

मीर गभरू—क़ौमियत से इंसानियत के टुकड़े न करो। इंसान की .ख्वाहिशें ही इन दीवारों की आड़ लेती हैं। एक दिन मैं भी क़ौम-परस्ती का मतलब उलटा समझता था। भाई, ईमान का साथ देना ही क़ौम-परस्ती है।

जय—तो क्यों नहीं आप हमारा साथ देते?

मीर गभरू—इसीलिए कि मेरा ईमान कहता है, जिसका नमक खाया है, उसके लिए जान कुरबान कर दो। हम दोनों भाई मैदान में एक-दूसरे के सर पर तलवारें ताने खड़े हैं, लेकिन हमारे दिल में वही मुहब्बत का दरया लहरा रहा है जो हमारी माँ ने अपने दूध के साथ हमारे भीतर भर दिया है।

मीर महिमा—आज मुहब्बत और ईमान की होड़ है, भाई!

मीर गभरू—मुहब्बत और ईमान में दुश्मनी नहीं है, भाई! आज लड़ाई में तुम मेरी गरदन उड़ा दोगे तब भी मैं यह नहीं कहूँगा कि तुम्हारे दिल में भाई की मुहब्बत न थी। इस हाड़-मांस के पुतले के मिट जाने से क्या है, महिमा! मुहब्बत इस जिस्म में नहीं है, वह दिल में है। एक घड़ी के लिए भी मैं यह नहीं सोच सका कि मेरा भाई मेरा दुश्मन है। और सच पूछो तो मैंने महाराव हम्मीर को भी अपना दुश्मन नहीं समझा। मैंने ईमानदारी से अपना

फ़र्ज़ अदा किया है। लड़ाई के मैदान के बाहर हम गले मिलेंगे और मैदान में हमारी तलवारें मिलेंगी।

मीर महिमा—भाई, यह हमारी आखिरी मुलाकात है। आज हमारा-तुम्हारा मुकाबला है। आज इस लड़ाई का फ़ैसला हो जाएगा। आज मैं अपने सर पर कफ़न बाँध कर निकला हूँ, भाई! लेकिन तुम्हें सामने पाकर मेरा दिल न जाने क्यों हिम्मत छोड़ रहा है।

मीर गभरू—भाई, तुम्हें महाराव की मुहब्बत की कीमत देनी ही होगी। जिस इंसान ने अपने बुजुर्ग चाचा, अपने बीसियों रिश्ते-दारों, सैकड़ों साथियों और हज़ारों चुने हुए बहादुरों को तुम्हारी ख़ातिर कटा दिया, उसकी मुहब्बत के आगे मेरी मुहब्बत क्या चीज़ है, महिमा!

मीर महिमा—मैं क्या बताऊँ भाई, मैंने तो महाराव जैसा इंसा-नियत का नमूना कहीं नहीं देखा। आज दोनों कुमारों को मेरे मात-हत लड़ने भेजा है। उन्हें अपने जिगर के टुकड़ों को मौत के मुँह में डालते हुए ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं हुई। और महारानी! उनकी बात क्या कहूँ, भाई! उन्होंने मुझे अपना सगा भाई माना है। जब दूसरे सरदार कहते हैं, महाराव, एक आदमी की ख़ातिर सारा मुल्क बरबाद न कराइए, अपने खानदान को न मिटाइए, उस वक्त महारानी कड़क कर कहती हैं, 'पृथ्वीराज के वंशज राजपूती आन नहीं छोड़ सकते। जब तक एक भी चौहान बचा जिंदा है हमारे मेहमान का बाल भी बाँका नहीं हो सकता।' महारानी ने अपने बेटों का

हाथ मुझे पकड़ा कर कहा, 'इन की ज़िंदगी तुम्हारे काम आ जावे तो मैं अपने को निहाल समझूँगी। सब से छोटा कुमार अभी बालक है नहीं तो उसे भी कुरबान करने में मुझे झिझक नहीं।'

मीर गभरू—वाह, राजपूत औरत! दुनिया के पर्दे में ऐसी मिसाल कहाँ मिलेगी! मैं बदक़िस्मत हूँ, महिमा! जो ऐसी देवी के कदमों में अपना सर नहीं झुका सका हूँ। इस लड़ाई का चाहे कुछ भी नतीजा निकले लेकिन जब तक सूरज-चाँद रहेंगे महाराव और महारानी के नाम रोशन रहेंगे। महिमा! मुहब्बत इससे ज़्यादा वक्त नहीं चुरा सकती। अब हम तलवारें मिलावें।

(तलवार निकालता है। मीर महिमा भी तलवार निकालता है। दोनों तलवार से तलवार मिलाते और मुसकराते हैं।)

मीर गभरू—विदा, भाई!

(मीर गभरू का प्रस्थान)

मीर महिमा—हमें ज़रा और आगे बढ़ना चाहिए!

(सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[**स्थान**—महाराव हम्मीर का अंतःपुर। **समय**—संध्या। हम्मीर सिंह अकेले चिंता-ग्रस्त घूम रहे हैं।]

हम्मीर—सब गए। एक-एक करके सब गए। किंतु मेरा

क्षत्रियत्व का अभिमान अब भी शेष है। राजपूती की आन पर हँसते-खेलते मेरा परिवार चढ़ गया। एक फलता-फूलता राज्य सर्वनाश की ज्वाला में जल गया। तो क्या मैं हार मान लूँ? संधि कर लूँ? असंभव! मैं चौहान-कुल को कलंकित न होने दूँगा। अभी तो मुझे अपने बाहु-बल पर विश्वास है। अभी मुझ में शत्रु से लोहा लेने का हौसला बाकी है। त्रिलोचन का तीसरा नेत्र मेरी तलवार में समा गया है। हम्मीर की तलवार शत्रु-सेना को खेत की तरह काटेगी।

(सुरजनसिंह का प्रवेश)

सुरजन—(अभिवादन करके) महाराव, सर्वनाश हो गया।

हम्मीर—जानता हूँ, सुरजन! दोनों कुमार वीर-गति पा गए। उन्होंने चौहान-वंश की आन रख ली, सुरजन! वे महाकाल की भाँति संहार करते हुए महाशून्य की गोद में सो गए।

(महारानी का प्रवेश)

महारानी—क्या कुमार वीर-गति पा गए?

सुरजन—हाँ, महारानी जी! मेरा तो हृदय टूक-टूक हुआ जा रहा है। मुझे डर लगता है, आपकी आँखों में आँसू नहीं है।

महारानी—अग्नि-पुत्रियाँ आँसू नहीं बहातीं। मुझ जैसी सौभाग्यशालिनी नारी कौन होगी? मेरे पुत्रों ने देश की मान-रक्षा के लिए, राजपूती आन के लिए, अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी है।

सुरजन—आपको दुःख नहीं होता, महारानी! आपका दिल...

महारानी—पत्थर का है! लेकिन इस पत्थर के अंतस्तल में

भी पानी है । प्राणों में आज भयंकर तूफ़ान उठ रहा है। ज्वाला-मुखी जल रहा है।

(राजकुमारी का वीर वेश में नंगी तलवार लिए प्रवेश)

राजकुमारी—माँ, मैं युद्ध करने जाऊँगी। मेरे भाई के हत्यारों को काल के गाल में पहुँचाऊँगी।

महारानी—मैं तो समझी कि मेरा एक कुमार लौट आया है। वाह बेटी, तू इस वेश में कैसी शोभा देती है! (हृदय से लगाती हैं)

सुरजन—महाराव, क्या अब भी संधि का समय नहीं आया?

हम्मीर—संधि का समय! इतने सर्वनाश के पश्चात् भी केवल अपमान को गले लगाऊँ, सुरजनसिंह! चाचाजी की, दोनों कुमारों की और हमारे हज़ारों सैनिकों की आहुति देने के बाद, अब मैं आत्म-रक्षा का प्रयत्न करूँ? धिक्कार है इस भावना को!

(चपला का सन्यासिनी के वेश में प्रवेश)

राजकुमारी—आ गई हो, बहन! ठीक समय पर आईं। हम वीरांगनाएँ अब शस्त्र पकड़ेंगी।

चपला—वाह, राजकुमारी, तुम तो आज साक्षात् कार्तिकेय जान पड़ती हो। लेकिन बहन, ये आँखें पुकार-पुकार कर कह रही हैं, वहाँ विनाश नहीं निर्माण निवास करता है।

हम्मीर—चपला, मैंने सारे देश का विनाश करा दिया।

चपला—कहाँ महाराव, देश में तो कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो महाराव पर यह आरोप लगाता हो। जले हुए ग्रामों के खँडहर, दिवंगत सैनिकों के स्त्री-बच्चे और रणथंभौर की खून से रँगी

भूमि, सब पुकार-पुकार कर कह रहे हैं, महाराव, आपने देश में प्राण डाल दिए हैं। यह साँसों की धड़कन ही तो जीवन नहीं है। क्षत्रियत्व का तेज ही क्षत्रियों का जीवन है। आत्म-सम्मान के लिए प्राण देना ही मानव का जीवन है।

हम्मीर—महिमाशाह का समाचार नहीं मिला, सुरजन !

चपला—उनका समाचार मैं जानती हूँ, महाराव ! वे भी लड़ते-लड़ते शहीद हो गए।

महारानी—सच, वह सच्चा मुसलमान ईमान पर कुरबान हो गया।

चपला—अकेला ही नहीं। राजकुमारों की मृत्यु के बाद मीर पागल हो गए। अंधा-धुंध तलवार चलाते हुए वे दुश्मन की फ़ौज में घुस गए। उनका भाई मीर गभरू सामने आया। दोनों मस्त हाथियों की तरह उलझ गए। लड़ते-लड़ते दोनों भाई एक-दूसरे पर लुढ़क गए और पास ही पास दोनों भाई चिर-निद्रा में सो गए।

हम्मीर—ये दोनों पठान मनुष्यता को अमर कर गए। जो अपने मित्र के लिए अपने भाई की गरदन पर तलवार चला सकता था, वह क्या साधारण मनुष्य था। सुरजन, महाराव ने मनुष्य को पहचानने में धोखा नहीं खाया।

सुरजन—लेकिन, अब तो युद्ध जारी रखने का कोई कारण नहीं रहा। मीर महिमा के लिए यह विध्वंस-चक्र चला था, अब इसे समाप्त हो जाना चाहिए। हमारे देश ने, हमारे राजा ने, और राज-

पूत भाइयों ने अपनी शक्ति का परिचय दे दिया है। मैं आपके हित-चिंतन को ही.........

हम्मीर—हित-चिंतन ! सुरजन, अब हित-चिंतन कैसा ? जो मेरे प्राणों का सहारा था, वही चला गया। तुम समझते हो मीर महिमा के शहीद हो जाने से हमारा कर्तव्य समाप्त हो गया। हम्मीर ऐसा नहीं सोच सकता। रणथंभौरगढ़ यदि शरणागत की रक्षा करने में समर्थ न हो सका तो उसके लिए बलि होने का साहस तो कर ही सकता है। संधि पर इस युद्ध की समाप्ति नहीं है। (महारानी से) महारानी !

महारानी—प्राणेश्वर !

हम्मीर—अब तुम्हारे तेज को प्रकट करने का समय आ गया है।

महारानी—मैं समझती हूँ, प्रियतम ! जौहर की ज्वाला हमारी प्रतीक्षा कर रही है ! चौहान-कुल का गौरव अक्षुण्ण रहेगा, महाराव ! जौहर की लपटों से चौहानों के प्राणों में प्रलयंकरी ज्वाला प्रज्वलित होगी।

हम्मीर—तो कल हम वीर-व्रत लेंगे। कल अंतिम युद्ध होगा। केसरिया वस्त्र पहन कर हम बाहर निकलेंगे। तुम चिता तैयार कर रखना। यदि हम विजय पाकर लौट आए तो जौहर की आवश्यकता न होगी, अन्यथा महाप्रकाश में मिल जाना।

महारानी—आपकी आज्ञा का पालन होगा।

हम्मीर—चपला, तुम प्राणों को प्रज्वलित करने वाला गीत सुनाओ। अंतिम गान सुनकर हम यहाँ से बिदा लें।

चपला--गीत मैं सुनाऊँगी, लेकिन एक बात पूछूँ, महाराव, जौहर और वीर-व्रत क्या इस युद्ध को समाप्त कर देंगे। जौहर की ज्वाला में जो देवियाँ भस्म हो जाएँगी, वीर-व्रत पालन करते हुए जो अवशेष राजपुत्र समाप्त हो जाएँगे, उनकी स्मृति क्या भविष्य में युद्ध की ज्वाला न भड़का देगी? इस युद्ध का नेतृत्व करने के लिए देश को कोई आश्रय चाहिए। राजा चाहिए।

हम्मीर—मुझे माँगती हो?

चपला—इतना बड़ा अधिकार मुझे नहीं है। मैं कुमार अक्षय-सिंह की भीख माँगती हूँ। अभी वे बालक हैं। चौहान-कुल के एक मात्र दीपक हैं। उन्हें मैं अपने अंचल में छिपाकर ले जाऊँगी।

हम्मीर—देश स्वयं राजा का चुनाव कर लेगा।

चपला—लेकिन बालक की बलि चढ़ाना निर्दयता है। बुलाइए कुमार को। राजकुमारी, कहाँ है तुम्हारा भाई।

राजकुमारी—मैं बुलाती हूँ! (राजकुमारी का प्रस्थान)

महारानी—हाँ, अब अपना गीत सुनाओ।

चपला—इस शोक के समय?

हम्मीर—अब हम सुख-दुःख के पार पहुँच चुके हैं। तुम गाओ, चपला।

चपला—(गाती है)।

जाग पड़े जौहर की ज्वाला।

अपनी तलवारें चमकाने,

जाते हैं माँ के दीवाने,

मर कर पीने जीवन-प्याला।
जाग पड़े जौहर की ज्वाला।
जब तक जीना आन न खोना,
रजपूती की शान न खोना,
जन्म-भूमि का मान न खोना,
करना कभी न यश-पट काला।
जाग पड़े जौहर की ज्वाला।
पहन-पहन केशरिया बाना,
गाते हुए युद्ध का गाना,
आज वीर-व्रत सब ने ठाना,
तुम भी पहनो लाल दुशाला।
जाग पड़े जौहर की ज्वाला।

(राजकुमारी का अक्षयसिंह के साथ प्रवेश)

महारानी—बेटा, आज से यह तुम्हारी माँ हैं। तुम्हें अभी जाना होगा।

अक्षय—कहाँ ?

चपला—संसार के युद्ध-क्षेत्र में। कितना उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य आज मैं अपने ऊपर ले रही हूँ। प्रभो, मुझे इस मधुर भार को सहन करने की शक्ति दो। (चपला और अक्षय का प्रस्थान)

हम्मीर—अब हम लोग कल के व्रत का प्रबंध करें।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[अलाउद्दीन अपने डेरे में मसनद से टिका बैठा है। सामने हुक्का रखा है, जिसकी लेजम उसके हाथ में है। कभी-कभी कश भी लगाता है । जमालखाँ तथा अन्य सैनिक अधिकारी बैठे हैं ।]

अलाउद्दीन—मीर गभरू के मारे जाने का मुझे बहुत अफ़सोस है। यह लड़ाई हमें बहुत मँहगी पड़ी। मुझे तो इस बात में शक है कि हम एक साल और लगे रहें तब भी हम्मीर पर काबू पा सकेंगे। हमारी आधी से ज़्यादा फ़ौज़ ज़ाया हो चुकी है। दिल्ली से यहाँ तक फ़ौज लाने में और रसद का इंतज़ाम करने में हमारा ख़ज़ाना भी ख़ाली हो चला है।

जमाल—मीर महिमा के लिए आप आए थे, सो वह तो अपने भाई की तलवार का शिकार हो चुका है। अब हम बिना अपनी इज्ज़त पर धब्बा लगाए वापस दिल्ली लौट सकते हैं।

अलाउद्दीन—लेकिन इससे तो मेरा बनाया हुआ सारा नक्शा बदल जाएगा, जमाल! रणथंभौर तो वह जगह है जहाँ बैठकर मैं सारे राजपूताने को जीतना चाहता हूँ।

जमाल—लेकिन रणथंभौर को जीतना आसान नहीं है यह आज तक का तजरबा[1] हमें बता चुका है। क्या हम अपनी ताकत ज़ाया नहीं कर रहे ? इन्हीं दिनों अगर अफगानिस्तान के रास्ते से

---

१. अनुभव।

कोई हमला कर दे, तो जब तक फौज यहाँ से वहाँ तक जाय, वह दिल्ली का तख्त..........

अलाउद्दीन—पलट सकता है। इसमें कुछ शक नहीं कि उस तरफ़ से हमला होने का हमेशा डर बना रहता है। ऐसी हालत में बहुत दिनों तक कहीं अपनी ताक़त को अटकाए रखना मुज़िर[1] है। शायद हमें रणथंभौर का घेरा उठाना ही पड़े।

(एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—(कोर्निश करके) एक राजपूत सरदार बादशाह सलामत से मुलाकात की अर्ज़ कर रहा है।

अलाउद्दीन—यहीं भेज दो।

(सैनिक का अभिवादन करके प्रस्थान)

अलाउद्दीन—अब आप लोग आराम करें।

(सब का प्रस्थान)

अलाउद्दीन—इसमें शक नहीं कि हम्मीर के भी चुने-चुने सरदार मारे गए। राजकुमार भी शहीद हो गए। लेकिन, फिर भी वह क़िले के भीतर महफ़ूज़ है। उसे इतनी कामयाबी से मुकाबला करते देख कर दूसरे राजाओं को भी हिम्मत होगी कि दिल्ली की बादशाहत के ख़िलाफ़ बग़ावत करें। ऐसी हालत में सुलह करके वापस लौट जाने में ही होशियारी है।

(सुरजनसिंह का प्रवेश और अभिवादन करना।)

अलाउद्दीन—ओहो आप हैं, ठाकुर सुरजनसिंह। मैं दिल में

---

१. हानिप्रद।

आप ही को याद कर रहा था। कहिए गढ़ के क्या हाल हैं ? अभी तक आपने वादा पूरा नहीं किया। क्या अब भी महाराव सुलह करने को तैयार नहीं।

सुरजन—संधि शब्द का उच्चारण महाराव पाप समझते हैं। लेकिन मैंने ऐसा चक्र चलाया है कि बादशाह को बिना अधिक प्रतीक्षा किए, बिना अधिक श्रम किए और बिना अधिक व्यय किए गढ़ हस्तगत हो जावे।

अलाउद्दीन—सच ? अच्छा यह तो बताओ आज गढ़ पर ये दीये क्यों जलाए गए हैं।

सुरजन—आज वहाँ उत्सव मनाया जा रहा है।

अलाउद्दीन—दोनों कुमारों की आज ही मौत हुई है और गढ़ में उत्सव मनाया जा रहा है, आप यह क्या कहते हैं ?

सुरजन—कुमारों के वीर-गति पाने से महाराव को शोक नहीं हुआ।

अलाउद्दीन—हमारी फ़ौज के सिपाहसालार गभरू के मारे जाने से वे खुश हो रहे हैं।

सुरजन—नहीं, वे अपनी संपूर्ण अवशेष शक्ति से अंतिम युद्ध करना चाहते हैं। मौत का आलिंगन करने के पहले जीवन का आनंद ले रहे हैं। गढ़ के बचने की अब उन्हें कोई आशा नहीं रही है। और मैंने महाराव को यह बात जँचा दी है कि रणथंभौर का धन-कोष समाप्त हो गया है। ऐसी स्थिति में अब वे प्राणों की आहुति देने को प्रस्तुत हैं।

अलाउद्दीन—सच ! तब तो मेरे पौ बारह हैं। मेरी किस्मत जाग पड़ी है। भाई मैं तो आज वापस जाने की बात सोच रहा था। आपने मेरे मुर्दा जिस्म में जान फूँक दी। आज हम भी जलसा मनाएँगे। सुरजन सिंह ! आज मैं आप को रणथंभौर का राव बनाऊँगा। आप को गाना सुनने का शौक़ है न राव ! मैं अपनी बाँदी को भेजता हूँ। आज रात आप यहीं आराम करें।

(अलाउद्दीन का प्रस्थान)

सुरजन—मैं रणथंभौर का महाराव बनूँगा। मेरा दिल आज काँप रहा है। मैं क्या करने जा रहा हूँ ! महाराव बनने के लिए अपने देश को शत्रु के हाथ में सौंपने का षड़यंत्र कर रहा हूँ। महाराव हम्मीर की लाल-लाल आँखें सामने चमकती हुई नज़र आती हैं। जिस जन्मभूमि की मान-रक्षा के लिए महाराव ने चाचा जी की और दोनों कुमारों की बलि चढ़ा दी, स्वयं भी राज-बलि चढ़ाने को प्रस्तुत हैं, और महारानी क्षत्राणियों के साथ जौहर की ज्वाला को पवित्र करने वाली हैं उस पर विदेशी की छत्र-छाया में मैं राज्य करूँगा।

(बिजली की तरह तीव्र गति से चपला का छुरी लिए हुए प्रवेश)

चपला—राज्य करोगे ? सुरजन ! (सुरजनसिंह की छाती में छुरी भोंक देती है।) पिशाच ! जन्मभूमि के विरुद्ध षड़यंत्र करने की यही सज़ा है।

सुरजन—(लेट जाता है) आह ! कौन चपला ? चपला, तुमने मुझे बचा लिया। मैं क्षत्रियत्व पर कलंक लगाने चला था। तुमने मेरे

पामर प्राणों को बेशर्मी का जीवन बिताने से बचा लिया। अब मैं कुछ घड़ी का मेहमान हूँ। तुम तुरंत यहाँ से भाग जाओ।

चपला—हाँ, जाने का प्रयत्न करूँगी। राजकुमार अक्षय का भार मुझ पर है। रात के अंधकार में आप को चोर की तरह इधर आते देख कर मुझे संदेह हुआ था, इसीलिए मैं चली आई। रणथंभौर की चिंता तो समय स्वयं कर लेगा, मुझे तो केवल क्षत्रियत्व की चिंता थी। मुझे खुशी है कि मुझे सफलता मिली। अब मैं जाती हूँ।

(चपला का प्रस्थान)

सुरजन—पानी! ओह यहाँ एक घूँट पानी देने वाला भी नहीं है! देश-द्रोही को ऐसी ही मौत मिलती है।

(हाथ में शराब का प्याला लिए, नर्तकी
का तान छेड़ते हुए प्रवेश)

नर्तकी—

मैं भर कर लाई प्याला,
तू बन पीकर मतवाला।

(सुरजन पर निगाह पड़ती है)

नर्तकी—(चौंक पड़ती है। हाथ से प्याला छूट पड़ता है और वह चीख उठती है।) खून! खून!!

(नर्तकी का प्रस्थान। अलाउद्दीन का प्रवेश)

अलाउद्दीन—क्या है? (सुरजनसिंह को देखकर) यह क्या! खून!

अलाउद्दीन—चौकीदार! चौकीदार!!

(एक चौकीदार का प्रवेश और अभिवादन करना)

अलाउद्दीन—ले जाओ इसे। कुत्तों के आगे डाल दो।

(चौकीदार सुरजनसिंह को घसीट ले जाता है।)

अलाउद्दीन—कैसा हैरत-अंगेज़[1] नज़ारा[2] है! मेरे डेरे में खून! मेरी नाक के नीचे!

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[रणथंभौर गढ़ की दीवार पर महारानी देवल और राजकुमारी चंद्रकला श्रृंगार किये हुए प्रवेश करती हैं।]

राजकुमारी—माँ, संध्या हो चली। युद्ध का कोई समाचार नहीं मिला। मैं समाचार लेने जाऊँ?

महारानी—हम थोड़ी देर और प्रतीक्षा करेंगी, बेटी! हमारी विजय असंभव तो नहीं है, लेकिन, उसकी आशा बहुत कम है। हमारी विजय तो हमारे आत्म-बलिदान में ही है।

राजकुमारी—माँ, जौहर में जलने के बजाय, युद्ध-भूमि में क्यों न चलें? क्या हम कुछ भी नहीं कर सकतीं?

महारानी—बेटी, हमारी शक्ति सैनिकों को जन्म देने में, उन्हें

---

१ विस्मयकारक। २ दृश्य।

शक्तिशाली बनाने में, है । सारे संसार को हम प्रकाश देती हैं । हम आत्म-दान और आत्म-बलिदान के द्वारा अत्याचार से युद्ध करती हैं। हम दूसरों को मार कर अपने देश को स्वतंत्र नहीं करती । हम तो स्वयं अपनी बलि देकर देश के प्राणों में नव-जीवन फूँकती हैं ।

(सुंदर वस्त्राभूषणों से सज कर अनेक क्षात्राणियों का प्रवेश)

महारानी—हमारा युद्ध करने का यही तरीका है । हमें अपने देश, धर्म और जाति से कितना प्रेम है केवल यही प्रमाणित करना हमारे लिए पर्याप्त है । बलिदान स्वयं अपना कार्य करता है । हिंसा का परिणाम अस्थायी है, किंतु आत्म-बलि का परिणाम अजर-अमर है । आज क्षत्रियों में जो तेज बाकी है, वह उनकी माँ-बहनों के आश्चर्यजनक आत्म-त्याग के कारण ही है । जौहर की जो लपटें आकाश को छूने बढ़ती हैं, वे अदृश्य रूप से युग-युग तक जलती रहती हैं ।

एक क्षत्राणी—महारानी जी, वे देखिए वे किसके निशान हैं ? निशानों के पीछे किसकी सेना है ।

महारानी—ये निशान तो शत्रु के हैं । ज्ञात होता है, सभी अग्नि-पुत्र रणभूमि में सो गए । उन्होंने अपना वीर-व्रत पालन कर लिया । इसके पहले कि शत्रु-सेना यहाँ तक आ पावे, हमें जौहर की ज्वाला प्रज्वलित कर के उसकी गोद में जा बैठना चाहिए ।

एक क्षत्राणी—हम प्रस्तुत हैं ।

महारानी—जिसे संसार का अब भी कुछ मोह बाकी हो, जो मृत्यु से डरती हो, जो आग की लपटों को सहने में समर्थ न हो, वह अब भी अपने जीवन की रक्षा का प्रयत्न कर सकती है। मैं उसके लिए गढ़ से बाहर पहुँचाने का प्रबंध करा दूँगी।

दूसरी क्षत्राणी—अग्नि के अंश को अग्नि में प्रवेश करते समय कष्ट कैसा? लज्जाजनक जीवन व्यतीत करने से अधिक कष्टकर स्थिति क्या हो सकती है? तिसपर महारानी जी हम लोगों के पिता-पुत्र-भाई सभी तो एक-एक करके देश के लिए बलि हो चुके। अब हमारे लिए आकर्षण ही क्या है? रात-दिन वियोग की ज्वाला में जलने से तो जौहर की ज्वाला कहीं अधिक शीतल है!

महारानी—इस जौहर को अंतिम आश्रय के रूप में नहीं, बल्कि जीवन-धर्म के रूप में अपनाना चाहिए। जब तक हमारे हृदय में ज्वाला को आलिंगन करने की प्रेरणा अंतरात्मा से नहीं उठेगी, तब तक हमारा बलिदान व्यर्थ होगा।

पहली क्षत्राणी—ठीक है, महारानी जी। जौहर तो हमारा जीवन-धर्म है। इस चिता में आग तो पीछे लगती है, हम ममत्व को उसके पहले ही जला चुकती हैं। हमारे जौहर की लपटें हमें उसी क्षण से भस्म करने लगती हैं, जब हम अपने हाथ से अपने पति, पुत्र और भाइयों को केसरिया बाना पहना कर रणभूमि की ओर भेज देती हैं। जौहर की लपटें तो हमारे जले हुए शरीर पर मरहम की तरह लगती हैं। मुसकराते हुए हम अमरत्व की गोद में खेलने लगती हैं।

महारानी—जाओ बेटी, फूल-मालाएँ लाओ।

(राजकुमारी का प्रस्थान)

महारानी—वीर-भूमि ! आज तुझे हमारा अंतिम प्रणाम है। सुदृढ़ रणथंभौर की चट्टानों से दिल्ली की सेना दस मास से निरंतर टकराती रही है। शत्रु की तोपें हार गईं, उसके सैनिक पराजित हो गए। मुट्ठी भर राजपूतों ने प्राणों पर खेल कर आज तक गढ़ की रक्षा की, और रक्षा करते हुए प्राणों की बलि चढ़ा दी। राजपूतों के पौरुष ने नहीं, द्रव्य ने धोखा दिया। साधन समाप्त हो गए, लेकिन हृदय पराजित नहीं हुआ। सम्राट् पृथ्वीराज आज भी स्वर्ग में बैठे अपने वंशजों के आत्म-बलिदान और शौर्य से प्रफुल्लित हो रहे होंगे।

(राजकुमारी फूल-मालाएँ लेकर आती है। महारानी राजकुमारी से एक-एक माला लेकर क्षत्राणियों को पहनाती हैं।)

महारानी—वीर माताओ, वीर बहनो, वीर पुत्रियो ! आज हम सब एक साथ चिता पर चढ़ कर एक रूप हो जाएँगी। हम में न कोई बड़ा है न कोई छोटा। संसार को दिखा दो कि वास्तविक जीवन क्या है। जब तक जीना गौरव के साथ जीना, स्वाधीनता को स्थिर रख कर जीना। जिस दिन पराधीनता अपने पैर बढ़ाए उस दिन या तो उसे भस्मसात् कर दे या स्वयं भस्म हो जावे।

(चपला का राजकुमार अक्षयसिंह के साथ प्रवेश)

चपला—महारानी ! अपने पुत्र को आशीर्वाद दो !

(राजकुमार माँ के चरण छूता है ।)

महारानी—बेटा अक्षय ! जौहर की लपटें धू-धू स्वर में तुम्हें आशीर्वाद देंगी। आज से जन्मभूमि की गोद ही तुम्हारी माँ होगी। कष्ट-सहन ही तुम्हारा भोजन। जिस आन पर तुम्हारे पिताजी ने सर्वस्व चढ़ा दिया, उसी पर तुम भी दृढ़ रहना। याद रखना क्षत्रिय सर कटा देते हैं, झुकाते नहीं।

अक्षय—माँ, तुम मुझे छोड़ जाओगी ?

महारानी—नहीं बेटा ! मेरा शरीर जल कर भस्म हो जाएगा, किंतु मेरी आत्मा सदा तुम्हारे चारों तरफ मँडराती रहेगी। तुम्हारे पिताजी की आत्मा भी तुम्हारी आत्मा में निवास करेगी। बेटा, क्षत्रिय मरा नहीं करते। वे चिर-अमरत्व में जीवित रहते हैं। जो एक दिन राज-मुकुट धारण करता है, दूसरे दिन उसी आनंद से वह उसे उतार कर फेंक भी सकता है। शिलाओं पर सोकर भी कभी यह न भूलना कि तुम भारत-सम्राट् पृथ्वीराज के वंशज हो, रणथंभौर की कीर्ति अमर कर जाने वाले महाराव के पुत्र हो। संपूर्ण क्षत्रियत्व की तुम पर आशा निर्भर है। झोंपड़ियों में रहते हुए भी यह न भूलना कि तुम्हें राजमहलों ने पाला है। झोंपड़ियों से घृणा न करना, लेकिन अपने गौरव की प्राप्ति की लगन न गँवा देना। हम अपने जौहर की ज्वाला से संपूर्ण देश का हृदय प्रज्वलित करके जा रही हैं। तुम जिस दिन हाथ में तलवार पकड़ोगे, देश तुम्हारे साथ खड़ा हो जाएगा। जाओ बेटा, तुम्हें हम सभी का आशीर्वाद है।

(राजकुमार महारानी के फिर चरण छूता है और बहन से गले मिलता है)

अक्षय—माँ, (कंठावरोध)

महारानी—बेटा, तुम्हारे अवरुद्ध स्वर को सुनती हूँ। तुम्हारे अबोध अंत:करण का निश्चय जानती हूँ। अक्षय ! तुम्हारी कीर्ति अक्षय हो।

अक्षय—मैं कायर की भाँति......

महारानी—नहीं अक्षय ! यह कायरता नहीं है। ध्वंसावशेष पर तुम्हें नव-निर्माण का कार्य करना है, बेटा ! साधन-हीन होकर भी पूर्वजों के स्वत्व को प्राप्त करना है।

चपला—महारानी, फिर आज्ञा...

महारानी—हाँ, बेटी जाओ !

(राजकुमार और चपला का प्रस्थान)

महारानी—जाओ आँखों के तारे ! आँखें क्यों बरसना चाहती हैं ? आँखों के मेघ, तुम पानी नहीं, बिजली गिराओ। चलो देवियो, अब चिता-सेज पर सोवें।

(सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[**स्थान**—रणथंभौर के नीचे की तलहटी। महाराव हम्मीर तथा अनेक राजपूत केसरिया बाना पहने, खून से लथपथ, हाथों में खून से रँगी तलवारें लिये प्रवेश करते हैं। महाराव के हाथों में अलाउद्दीन का झंडा है। और भी सैनिकों के हाथ में शत्रु के झंडे हैं।]

हम्मीर—गाओ, वीरो, विजय का गीत गाओ।

कुछ सैनिक—(गाते हैं)

गाओ वीर विजय का गाना।
हम पर कौन विजय है पाता?
जो आता वह शीश गँवाता।
हम से है यम भी घबराता।
पहने हम केसरिया बाना।
गाओ वीर विजय का गाना॥

देखो यह असि राजस्थानी।
देखो इसका तीखा पानी।
अमर हो गई आज जवानी।
व्यर्थ न जाता शीश कटाना।
छेड़ो वीर विजय का गाना॥

ज्योंही हम ने आँख तरेरी,
खेत छोड़ कर भागे वैरी,
उनकी करने चलो अहेरी,
सफल हुआ है जग में आना।
गाओ वीर विजय का गाना।

हम्मीर—निश्चय ही आज हमारा जन्म लेना सफल हो गया। दस मास की लंबी, कष्ट-कर और भयंकर लड़ाई के बाद हमारी साध पूरी हुई है।

एक राजपूत—महाराव, आपके सामने कौन टिक सकता है? आपको आशा हो या न हो, हमें आज प्रभात की किरणों में ही विजय का संदेश मिल गया था। आपकी छत्र-छाया में अनेक युद्ध लड़े, महाराव, लेकिन ऐसा युद्ध तो अपने जीवन में कभी न देखा न सुना। उस जन-समुद्र में आप तीर की तरह घुस पड़े। भला, हम आपको, अकेला जाने देते! हमारे प्राणों में बिजली दौड़ गई। हम भी आपके साथ ही घुसे चले गए। जाकर सीधा अलाउद्दीन का हाथी घेर लिया।

हम्मीर—मेरे दिल की दिल में ही रह गई। महावत उसके हाथी को भगा न ले जाता तो यह कंटक सदा के लिए निकल जाता। हमारी विजय स्थायी हो जाती। ये रक्त-बीज के वंशज फिर हमारी नष्ट-प्राय शक्ति पर आक्रमण करने को आवेंगे।

दूसरा राजपूत—जो होगा देखा जायगा। आज का युद्ध तो

उन्हें वर्षों तक याद रहेगा। बादशाह को भागते देख कर उनकी सेना निशान आदि छोड़ कर भाग खड़ी हुई।

तीसरा राजपूत—महाराव, ये निशान अब हमें इनाम में मिल जाएँगे न !

हम्मीर—ये निशान ही नहीं, बहुत कुछ । अरे किले के भीतर यह लपटें कैसी ! ज़रा अपनी तुरही बजाओ।

(एक सैनिक तुरही बजाता है)

एक राजपूत—आकाश में धुएँ के बादल छा रहे हैं।

हम्मीर—जान पड़ता है, वीरांगनाओं ने जौहर-व्रत का पालन किया है। हम लोगों की विजय की उन्हें आशा नहीं थी।

(चपला का प्रवेश)

चपला—कौन ! महाराव !

हम्मीर—तुम यहाँ ?

चपला—मैं छिपे-छिपे कुमार अक्षयसिंह को लेकर जा रही थी कि अपनी तुरही सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। इसलिए इधर आई हूँ। लेकिन महाराव, बड़ा अनर्थ हुआ।

हम्मीर—वीरांगनाओं ने जौहर-व्रत का पालन किया, यही न ! उन्हें हमारे शौर्य पर इतना अविश्वास था ?

चपला—नहीं महाराव ! आपने आगे-आगे शत्रु के निशान कर रखे थे, इसलिए उन्होंने समझा शत्रु की सेना बढ़ी चली आ रही है। सभी राजपूत वीर-गति को प्राप्त हो चुके हैं। उन्होंने जो कुछ किया वह सर्वथा स्वाभाविक था।

हम्मीर—निश्चय ही इसमें उनकी कोई ग़लती नहीं है। उन्होंने राजस्थान की कीर्ति को चार चाँद लगा दिए हैं। हम विजय के उत्साह में भूल ही गए कि लूटे हुए निशानों को आगे रखने से कितना अनर्थ हो सकता है। भगवान शंकर को जो स्वीकार था वही हुआ। नियति के वज्र-शंख के आगे मानव का पराक्रम पराजित हुआ। हमारी विजय अब हमारे किस उपयोग की ? अब गढ़ के भीतर जाकर क्या होगा ? अब संसार में हम लोग बिलकुल अकेले हैं। चलो, वापस चलो। शत्रु से लोहा लेते हुए सदा के लिए सो जाओ। नियति हमारे विरुद्ध है, भाई ! और फिर एक न एक दिन तो यह स्थिति आनी ही थी। दो दिन पहले आ गई तो क्या चिंता ? चलो, फिर हम लोग अपना खेल खेलें।

चपला—महाराव ! विवेक !

हम्मीर—विवेक का दीपक बुझ चुका है। महायज्ञ की पूर्णाहुति हो चुकी है। हवन-सामग्री के कुछ कण इधर-उधर क्यों बिखरे रहें। इन्हें भी बटोर कर यज्ञ-कुंड में डालना होगा। हम लोगों ने अपनी आन के लिए सर्वस्व न्योछावर कर दिया। हमें किसी प्रकार की निराशा नहीं। शत्रु को हमारी शक्ति का परिचय मिल चुका है। संसार ने हमारा तेज देख लिया है। संभव है संसार में ऐसे भी लोग हों जो इस संपूर्ण घटना को हम्मीर के हठ का परिणाम कहें। देश-व्यापी हाहाकार में शायद महाराव के प्रति अभिशाप का स्वर निकले......

चपला—यह आप क्या कहते हैं, महाराव ! न्याय के लिए

आपने युद्ध किया, मित्रता के ऊपर सब कुछ न्योछावर कर दिया।

हम्मीर—ऐसे मित्र के लिए जिसने अपने हाथ से अपने भाई का गला काटने में संकोच नहीं किया। केवल जाति के विरुद्ध ही वह खड़ा नहीं हुआ, अपने आत्मीय के सर पर भी उसने प्रहार किया। मैंने उसकी ख़ातिर यदि अपने आत्मीयों की बलि चढ़ाई तो क्या बुरा किया ?

(राजकुमार का प्रवेश)

चपला—तुम भी आगए।

राजकुमार—कब तक खड़ा प्रतीक्षा करता ?

(पिता के चरण छूता है।)

हम्मीर—अच्छा है, बेटा, तुम भी आगए। अंतिम समय में तुम्हें हृदय से लगा लूँ! (छाती से लगाता है) बेटा तुम्हें बे-माँ-बाप का नितांत गरीब बनाकर मैं जा रहा हूँ। मुझे क्षमा करना। (आँसू)।

अक्षय—पिताजी, आप रोते हैं ! मुझे दुर्बल समझते हैं ! माता जी विदा देते समय नहीं रोईं। उन्होंने हँसकर मुझे आशीर्वाद दिया था।

हम्मीर—उनके प्राणों का रुदन उन लपटों की धूँ-धूँ आवाज़ में प्रतिध्वनित हो रहा है। उनके हृदय का हा-हा-कार युग-युग तक व्याप्त रहेगा। मैं मनुष्य हूँ, तुम्हारी माँ भी मनुष्य थीं। यह कैसे हो सकता है कि वे तुमसे बिदा लेते समय रोईं नहीं। मैंने

तो इतनी दूर रहकर उनकी सूखी आँखों के समुद्र को देखा था। भूलो इन बातों को, बेटा! तुम संसार में जीना सीखना। कष्टों की आग में झुलसते हुए विधाता को कोसना नहीं। रणथंभौर हमारा है हमारा होकर रहेगा। मेरी विजय पराजय में परिणत हो गई। तुम पराजय को विजय में परिणत करना। लो बेटा, यह मुकुट तुम्हारे सर पर रखता हूँ। अब मैं इस महायज्ञ में अपनी आहुति डालने जाता हूँ। (मुकुट अक्षय के सर पर रखते हैं।)

[पटाक्षेप]

———

प्रतिशोध

[इसी लेखक की कलम से]

प्रेमी जी का यह नाटक अपने प्रकार का एक ही है। बुंदेलखंड का प्राचीन इतिहास उतना ही वीरतापूर्ण है जितना कि राजपूताने का। अमर वीर चंपतराय और उनके साहसी पुत्र छत्रसाल के जीवन पर ही यह नाटक लिखा गया है। किस प्रकार चंपतराय ने अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए जीवन भर युद्ध किया, किस प्रकार उनकी पत्नी ने उनका सुख-दुख में साथ दिया, किस प्रकार अन्त में शत्रु के हाथ पड़ने के बजाय चंपतराय ने अपनी ही पत्नी को उन्हें कत्ल करने का आदेश दिया, जिसका उसने पालन किया, किस प्रकार जरा-सी उम्र में ही छत्रसाल ने केवल मुट्ठी भर बुंदेलों को लेकर विशाल मुगल-साम्राज्य से लोहा लिया और देश को स्वतन्त्र किया, आदि घटनाएँ प्राणों को उन्मत्त कर देती हैं। पढ़ने और खेलने दोनों के योग्य।

मूल्य १)

हिन्दी भवन लाहौर